* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

वर्ष ८९

संख्या १२

गीताप्रेस, गोरखपुर

राजराजेश्वरी भगवती श्रीविद्या
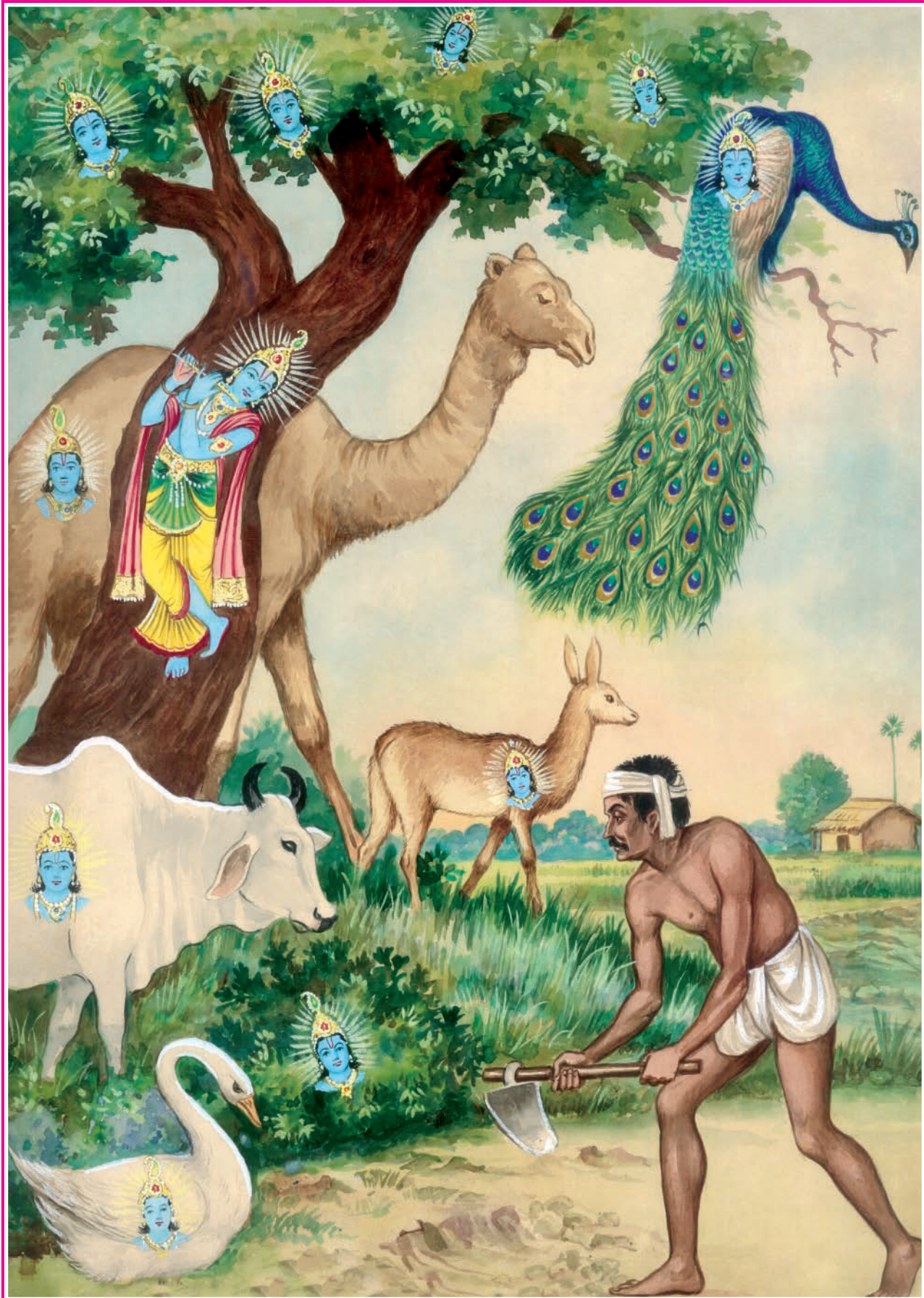
सबमें भगवद्-दृष्टि

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९ | गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, दिसम्बर २०१५ ई० | संख्या १२

पूर्ण संख्या १०६९

गीताका सन्देश—सबमें भगवद्-दृष्टि

सब भूतोंमें स्थित आत्मा है, आत्मामें है भूत अशेष।
योगयुक्त सबमें समदर्शी योगीकी यह दृष्टि विशेष॥
जो मुझको सर्वत्र देखता, मुझमें देखे सारा दृश्य।
उसके लिये अदृश्य नहीं मैं, वह भी मुझसे नहीं अदृश्य॥
सब भूतोंमें स्थित मुझको जो भजता है रख एकीभाव।
वह योगी रह सब प्रकारसे मेरे हित करता बर्ताव॥
जो अपनी ही भाँति देखता है सबमें सुख-दुःख समान।
अर्जुन! वह माना जाता है योगी सबसे श्रेष्ठ महान्॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, दिसम्बर २०१५ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

जो मनुष्य सचमुच भगवान्‌के नामका आश्रय ले लेता है, वही भाग्यवान् है, वही सुखी है और वही सच्चा साधक है। जिसकी जीभ और चित्तवृत्ति भगवन्नाममें लगी है, वही साधु है, उसका जीवन धन्य है और उसका सत्संग सभीके लिये वाञ्छनीय है। जिसकी जिह्वा निरन्तर पतित-पावन हरिनामकी रट लगाती रहती है, वह चाण्डाल होनेपर भी सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि वही प्रभुका प्यारा है। भगवान्‌के नाम-कीर्तनसे केवल पापोंका नाश ही नहीं होता—पाप-नाशके लिये तो शास्त्रोंमें अनेक प्रायश्चित्त बतलाये ही गये हैं, नामका फल है पंचम पुरुषार्थ—श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति। पापनाश और मुक्ति तो नामके आनुषंगिक फल हैं, जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रकाश होता ही है।

नामसे सायुज्य मोक्षकी आकांक्षा भी मिट जाती है; क्योंकि उस मोक्षमें प्रियतमके नाम-गुणका कीर्तन कहाँ? जैसे जगत्‌के प्रकाशक प्रभाकरके प्रकट होते ही जगत्‌का सारा अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही नामरूपी सूर्यके उदित होते ही पाप-समूह समूल नष्ट हो जाता है। भगवान्‌का नाम अज्ञान-समुद्रसे तारनेके लिये तरणीके समान है। ऐसे जगन्मंगलकारी हरिनामकी जय हो—**'जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम।'** भगवन्नामकी वास्तविक महिमा क्या है, इसे कोई कह नहीं सकता। वह अचिन्त्य है, अनिर्वचनीय है। नामकी महिमा भक्तलोगोंने जो गायी है, वह तो कृतज्ञ-हृदयके उद्‌गार-मात्र हैं, अर्थात् जिन महापुरुषोंको नामसे अशेष लाभ हुए हैं, उन्होंने उन अशेष लाभोंको लक्ष्यमें रखकर भगवन्नामकी महिमा गायी है। नामके विषयमें इसके आगे क्या कहा जाय, जैसा कि तुलसीदासजीने कह दिया है कि ***'रामु न सकहिं नाम गुन गाईं।'***

साधकको चाहिये कि वह व्यर्थका बोलना बन्द कर दे और उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते जीभसे बराबर भगवान्‌का नाम लेता रहे। अपने जिम्मेका काम सब करे, पर कामभरको बोले और जीभको लगाये रखे—भगवान्‌के नाम-जपमें। व्यर्थ बोलना बन्द कर देनेसे चार लाभ होते हैं—झूठ छूटता है, परनिन्दा छूटती है, व्यर्थकी चर्चा छूटती है तथा वाणीमें शक्ति आ जाती है और भगवन्नामके जपनेका पूरा अवसर मिलता है।

जिह्वाके दोषोंसे बचनेके लिये यह आवश्यक है कि हम अधिक समयतक मौन रहें और इस प्रकारकी प्रतिज्ञा अवश्य कर लें कि बोलना अनिवार्य हुए बिना बोलेंगे ही नहीं तथा वह भी आवश्यकताभर, अधिक नहीं और वह भी अच्छी तरह सोच-विचारकर जहाँ-तहाँ जैसे-तैसे नहीं। दूसरा यह निश्चय करें कि वाणी भगवान्‌का नाम लेनेके लिये मिली है, अतएव उसे बराबर भगवान्‌का नाम लेनेमें लगाये रखना है, आवश्यकता होनेपर कम-से-कम बोलकर पुनः भगवान्‌का नाम लेना आरम्भ कर देना है।

वे लोग सचमुच बड़े भाग्यशाली हैं, जिन्हें बहुत कम बोलना पड़ता है और जो निरन्तर भगवान्‌का नाम लेते हैं। प्रातःकाल उठनेसे रात्रिमें सोनेतक जीभपर निरन्तर भगवान्‌का नाम आता रहे—इसकी पूरी चेष्टा करनी चाहिये। इससे अपने-आप बोलना कम हो जायगा और पर-चर्चाको अवकाश नहीं मिलेगा। भगवान्‌का नाम न भूले, भूल जाय तो इसके लिये खेद हो। भगवन्नाम-जप-कीर्तन करते समय उसे सुनते भी रहें। इससे मनको उसमें लगाना पड़ेगा; क्योंकि बिना मनको उसमें लगाये सुन न सकेंगे। यह मानसिक स्मरण है। इसका बड़ा महत्त्व है।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

राजराजेश्वरी भगवती श्रीविद्या

लौहित्यनिर्जितजपाकुसुमानुरागां
पाशाङ्कुशे धनुरिषूनपि धारयन्तीम्।
ताम्रायतामरुणमाल्यविशेषशोभां
ताम्बूलपूरितमुखीं त्रिपुरां नमामि॥

अर्थात् अपनी अरुणाभ (रक्तिम) आभासे जो जपा कुसुमके लौहित्य (रक्त) वर्णको भी तिरस्कृत करनेवाली हैं, जो अपने हाथोंमें पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करनेवाली, ताम्रवर्णसदृश सुन्दर मालाके कारण विशेष सुन्दरतासे युक्त हैं, जिनका मुख ताम्बूलसे पूरित है, ऐसी देवी त्रिपुराको मैं प्रणाम करता हूँ।

राजराजेश्वरी भगवती श्रीविद्या दशमहाविद्याओंमें षोडशी नामसे जानी जाती हैं। ये माहेश्वरी शक्तिकी सबसे मनोहर श्रीविग्रहवाली सिद्ध देवी हैं। महाविद्याओंमें इनका चौथा स्थान है। सोलह अक्षरोंके मन्त्रवाली इन देवीकी अंगकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डलकी आभाकी भाँति है। इनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। ये शान्तमुद्रामें लेटे हुए सदाशिवपर स्थित कमलके आसनपर आसीन हैं। इनके चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अंकुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देनेके लिये सदा-सर्वदा तत्पर भगवतीका श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दयासे आपूरित है। जो इनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वरमें कोई भेद नहीं रह जाता है। वस्तुतः इनकी महिमा अवर्णनीय है। संसारके समस्त मन्त्र-तन्त्र इनकी आराधना करते हैं। वेद भी इनका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। भक्तोंको ये प्रसन्न होकर सब कुछ दे देती हैं, अभीष्ट तो सीमित अर्थवाच्य है।

प्रशान्त हिरण्यगर्भ ही शिव हैं और उन्हींकी शक्ति षोडशी हैं। तन्त्रशास्त्रोंमें षोडशी देवीको पंचवक्त्र अर्थात् पाँच मुखोंवाली बताया गया है। चारों दिशाओंमें चार और एक ऊपरकी ओर मुख होनेसे इन्हें पंचवक्त्रा कहा जाता है। देवीके पाँचों मुख तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव अघोर और ईशान शिवके पाँचों रूपोंके प्रतीक हैं। पाँचों दिशाओंके रंग क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील और पीत होनेसे ये मुख भी उन्हीं रंगोंके हैं। देवीके दस हाथोंमें क्रमशः अभय, टंक, शूल, वज्र, पाश, खड्ग, अंकुश, घण्टा, नाग और अग्नि हैं। इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपसे विकसित हैं, अतएव ये षोडशी कहलाती हैं।

षोडशीको श्रीविद्या भी माना जाता है। इनके ललिता, राजराजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बालापंचदशी आदि अनेक नाम हैं। इन्हें आद्याशक्ति माना जाता है। अन्य विद्याएँ भोग या मोक्षमेंसे एक ही देती हैं। ये अपने उपासकको भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करती हैं। इनके स्थूल, सूक्ष्म, पर तथा तुरीय चार रूप हैं।

एक बार पराम्बा पार्वतीजीने भगवान् शिवसे पूछा—'भगवन्! आपके द्वारा प्रकाशित तन्त्रशास्त्रकी साधनासे जीवके आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता तो दूर हो जायँगे, किंतु गर्भवास और मरणके असह्य दुःखकी निवृत्ति तो इससे नहीं होगी। कृपा करके इस दुःखसे निवृत्ति और मोक्षपदकी प्राप्तिका कोई उपाय बताइये।' परम कल्याणमयी पराम्बाके अनुरोधपर भगवान् शंकरने षोडशी श्रीविद्या-साधना-प्रणालीको प्रकट किया। भगवान् शंकराचार्यने भी श्रीविद्याके रूपमें इन्हीं षोडशी श्रीविद्याकी स्तुति करते हुए कहा है कि 'अमृतके समुद्रमें एक मणिका द्वीप है, जिसमें कल्पवृक्षोंकी बारी है, नवरत्नोंके नौ परकोटे हैं; उस वनमें चिन्तामणिसे निर्मित महलमें ब्रह्ममय सिंहासन है, जिसमें पंचकृत्यके देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर आसनके पाये हैं और सदाशिव फलक हैं। सदाशिवके नाभिसे निर्गत कमलपर विराजमान भगवती षोडशी त्रिपुरसुन्दरीका जो ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं। भगवतीके प्रभावसे उन्हें भोग और मोक्ष दोनों सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं।' भैरवयामल तथा शक्तिलहरीमें इनकी उपासनाका विस्तृत परिचय मिलता है। महर्षि दुर्वासा एवं आद्यशंकराचार्य आदि इनके परमाराधक थे। इनकी उपासना श्रीचक्रमें होती है।

प्रेमकी विलक्षण एकता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६५-६६)

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कहे हुए इन श्लोकोंमें कितना ऊँचा भाव भरा है। भगवान् कहते हैं कि मेरेमें अचल मनवाला हो, मेरा भजन कर, मेरी ही पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर। दृढ़ विश्वास कर, ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा। सब धर्मोंका आश्रय छोड़कर मेरी शरण आ जा, मैं तुझे सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा। शोक मत कर।

क्या इससे भी बढ़कर कोई बात हो सकती है। शास्त्र तो अनन्त हैं। अर्जुन ही सर्वश्रेष्ठ भक्त नहीं थे, उनसे बढ़कर बहुत भक्त हुए हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् स्वयं कहते हैं—'**ता मन्मनस्का मत्प्राणाः**' (१०। ४६। ४)। गोपियाँ जिस प्रकार तत्त्वको जानती हैं, वैसा कोई भी नहीं जानता। भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'**मन्मना भव।**' पर गोपियाँ तो ऐसी थीं ही।

नित्य सूर्योदयसे पूर्व उठनेवालेको कोई कहे कि 'तुम सूर्योदयसे पूर्व उठा करो' तो वह हँसेगा कि यह जानता नहीं। अतः भगवान् गोपियोंको ऐसा उपदेश नहीं कर सकते। गोपियाँ अर्जुनसे बहुत ऊँचे दर्जेकी थीं। जो बहुत श्रद्धालु होता है, उसके सामने ऐसा नहीं कहा जा सकता कि 'मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।'

अर्जुनसे भगवान्ने कहा—'**मा शुचः**' शोक मत कर। [यदि वह भगवान्के स्वभावको जानता तो शोक हो ही कैसे सकता था।] सभी पापोंसे छुड़ा दूँगा। जो उच्च श्रेणीके भक्त होते हैं, वे पापोंसे माफी नहीं चाहते। वे यह भी नहीं कहते कि 'आप बड़े क्षमावान् हैं, दयालु हैं', दासोंके दोषोंको भी नहीं देखते, वे तो भोगकर ही संतोष करते हैं। अर्जुनने तो छूट स्वीकार की।

गीतामें हमलोगोंके लिये बड़ा ऊँचा उपदेश है। हम अर्जुन-जैसे भी नहीं हैं। हम मोक्ष भी चाहते हैं और 'चिन्ता न हो' यह भी चाहते हैं। पर जो उच्च श्रेणीके भक्त होते हैं, वे 'क्षमावान् एवं दयालु' ऐसा नहीं कहते। उन्हें दीनबन्धु भी क्यों कहे? कहें वे जिन्हें आपसे कुछ चाह हो। जो खुशामदी होते हैं, वे उन्हें दयालु कहते हैं। हम नहीं कहते, हम दया भी नहीं चाहते। आप आर्त, अनाथ और दीनोंके नाथ हैं, उनपर आप दया करें। कोई लखपति आये और उसे दो रुपया भेंटमें दें तो वह कहेगा कि यह दीनोंको दे दो। जहाँ उच्च श्रेणीका प्रेम होता है, जहाँ सारे भाव समाप्त हो जाते हैं, वहाँ न छोटे-बड़ेका भाव है, न दास्यभाव है, न वात्सल्यभाव है, न माधुर्यभाव है। वहाँ स्वकीय-परकीय-सम्बन्ध ही नहीं है, तब माधुर्यभाव कैसे हो। 'भगवान् पति हैं, मैं उनकी पत्नी हूँ।'—यह भाव भी वहाँ नहीं, सख्य-भाव भी नहीं है। यह बात अनिर्वचनीय है। वहाँ दो बात रहती ही नहीं। दीखनेमात्रके ही दो हैं, पर दो हैं नहीं, एक ही हैं। जैसे दो हाथ हैं, इन्हें मिला लिये तो एक हो गये। इनमें बड़ा-छोटा कौन? सोचना चाहिये—ये दो हैं या एक। देखनेमें दो होते हुए भी एक हैं, एक दीखते हुए भी दो हैं। वेदान्तके सिद्धान्तमें तो वस्तुसे एक ही हैं। पर यहाँ एक होते हुए भी दो हैं। दो होते हुए भी एक हैं।

ऐसे उच्च श्रेणीके प्रेममें वेदान्तसे भी विलक्षण एकता है, एक-सा अलौकिक प्रेम है—

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३१)

भगवान्में ही बरतना भिन्नता है और एकत्वमें स्थित होना एकता। इसलिये दोनों बातें आयीं। एकतामें स्थित होकर भजन करना एक बहुत विलक्षण उपासना है। वहाँ प्रभु नहीं कहा जाता, वहाँ तो एकता है। प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पद तीनों एक हैं। वहाँ दोनों प्रेमी और

दोनों ही प्रेमास्पद हैं। एकको दृष्टिमें एक प्रेमी है और एक प्रेमास्पद। यह अभेदकी पराकाष्ठा है। उसमें गुणकी और स्वरूपकी बातें बहुत दूर ही रह जाती हैं। जैसे राजाके नौकर-चाकर बाहर ही रह जाते हैं।

गोपियोंका भगवान्‌में माधुर्यभाव है। यह जो उपर्युक्त उच्च श्रेणीकी बात है, वहाँ गोपियाँ तो पहरा देती हैं। वहाँ प्रभाव, गुण कुछ भी नहीं है और जहाँ प्रभाव तथा गुणोंको लेकर प्रेम है, वहाँ तो वह मानता है कि भगवान् महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, प्रभाव ही महत्त्वपूर्ण है। गुण समझकर प्रेम करना तो पातिव्रतसे भी नीचा है। वह गुणी समझकर प्रेम नहीं करता। कैसा भी हो, अपना काम तो केवल प्रेम करना ही है। पूर्ण प्रेमकी जहाँ बात होती है, वहाँ जैसे दो हाथ हैं, ये कोई गुण समझकर प्रेम नहीं करते, वैसे भगवान्‌में और प्रेमीमें भी कोई भेद नहीं। भगवान्‌में कोई विशेषता नहीं है। वहाँ तो तीनों चीजें एक हो जाती हैं। भगवान्, भक्ति और भक्त—ये तीनों एक हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति वहाँ हो जाती है।

इतनी बातें कही गयीं, फिर भी रुपयेमें एक पैसा भी नहीं कही गयी। वास्तवमें जो बातें हैं, वह समुद्रके समान हैं, मनमें जो बातें आयीं, वे बूँदके समान हैं और वाणी तो परमाणुमात्र है। जन्मभर भी कहा जाय तो एक बूँद भी पूरी नहीं हो सकती।

असलमें हमलोगोंका जीवन इस चर्चामें ही बीते। न भगवान्‌के मिलनेकी जरूरत है, न और कुछ। बस, इस प्रकार जीवन बीते। मिलनेकी तथा मुक्तिकी अथवा परिस्थितिके लिये भी इच्छा न करे। यद्यपि यह अच्छी है, पर इससे भी बढ़कर इसके साधनको माने। सिद्धावस्था तो अपने-आप होगी। पर उसको लक्ष्य करके साधन करनेसे विलम्ब होगा। यह भावना भी न हो तो और ऊँचे दर्जेकी बात है। उससे भी हटकर इसे समझेंगे तो जल्दी सिद्धि होगी।

भगवान्‌की प्राप्तिकी इच्छाकी अपेक्षा प्रेम-मार्गमें चलते रहें और प्राप्तिकी इच्छा न करें तो भगवान् जल्दी मिलेंगे। यह भी इच्छा न रहे तो और अच्छा।

वार्तालाप बहुत उच्च श्रेणीका होने लगेगा तो वहाँसे भगवान् धक्का देनेपर भी नहीं जायँगे। कहीं यह कानून पास न करना पड़े कि भगवान् यहाँ नहीं आ सकते, वार्तालाप समाप्त हो जाय तब आ सकते हैं।

भगवान् वहाँ संकोचमें पड़ जाते हैं। भक्त भगवान्‌पर विजय कर लेता है। यह विजय पानेका असली साधन है।

भगवान् और भक्त—ये शब्द यहाँके हैं। वहाँ तो एक-दूसरेकी दृष्टिमें दोनों ही भगवान् और दोनों ही भक्त हैं। वह तो एक अलौकिक बात है। मिलनेके पूर्वकी चेष्टा है। उदाहरणमें राम-भरत-मिलापको ले सकते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—'उसका वर्णन वाणीद्वारा नहीं किया जा सकता।' राम-भरत मिलते हैं, पर वहाँ ऐसा मिलाप नहीं है। भगवान् ही भगवान्‌से मिलें—यह मिलाप कितना विलक्षण है। भक्तकी चेष्टा उत्तरोत्तर भगवान्‌के हृदयमें आह्लाद बढ़ानेवाली है। भगवान्‌की चेष्टा भक्तके आह्लादको बढ़ानेवाली है। उन दोनोंका मिलन हाथ बढ़ाकर मिलनेसे बहुत ही विलक्षण है। उस समय सारे अंग-प्रत्यंग प्रेमकी मूर्ति धारण कर लेते हैं। अंगी, अंग, चेष्टा—सब एक प्रेममय हो जाते हैं। एक हो जाते हैं। वह मिलन चित्रित करके वाणीसे कहा जा सके, यह असम्भव है।

अंग, प्रत्यंग और चेष्टाएँ सारी चीजें एक प्रेममय हो जाती हैं। वहाँ प्रेम नहीं रहता। भगवान् और भक्त दोनोंकी एक दशा हो जाती है, वे भी भिन्न नहीं रहते। हमलोगोंका प्रेम जड़ है, किंतु वहाँका प्रेम भी चेतन है। वहाँके प्रेमी प्रेममय हैं। वहाँ धर्मी और धर्म नहीं है। वहाँ तो केवल एक धर्मी है। वह विशुद्ध प्रेम है। प्रेम ही भगवान् हैं, प्रेम ही भक्त है और प्रेम ही प्रेम है। कथनमात्रके ही तीन रूप हैं।

भगवान्‌की चेष्टा भक्तके आह्लादके लिये और भक्तकी भगवान्‌के आह्लादके लिये और प्रेमके लिये होती है, परंतु वहाँ भी आगे जाकर आह्लाद और प्रेमकी अलग व्याख्या समाप्त हो जाती है और भगवान् तथा भक्तकी भी अलग व्याख्या नहीं रहती, सब एक ही हो जाते हैं।

समझनेके लिये चाहे जो कहें। यहाँ वेदान्तकी एकता नहीं है, वह ज्ञानका मार्ग है और उसीकी प्रधानता है। यहाँ प्रेमकी प्रधानता है। इसका फल कोई भी नहीं बतला सकता। जिसे वह प्राप्त होता है, वही जान सकता है। 'जान सकता है'—यह भी कहनेके लिये ही है, वस्तुतः यह भी कहा नहीं जा सकता। जानता क्या है? वह तो हो ही जाता है। क्या हो जाता है? होनेपर ही जाना जा सकता है। उसका उपाय क्या है?

उपाय यही है जो हम कर रहे हैं। जैसे भगवान्‌की माधुर्य-भक्तिमें श्रीराधिकाजी आह्लादिनी शक्ति हैं, आनन्दमय ब्रह्म साक्षात् श्रीकृष्णको आह्लादसे नचानेवाली हैं। आनन्दमयी भक्ति एक हुई और प्रेममयी एक हुई। भगवान्‌को श्रीराधिका आनन्द देनेवाली होनेसे आनन्दमयी शक्ति हुईं और भगवान् हुए प्रेममयी शक्ति। जहाँ भगवान् श्रीराधिकाजीको आनन्द देते हैं, वहाँ वे आनन्दमयी शक्ति हैं और श्रीराधिकाजी प्रेममयी।

गौडीय सम्प्रदायवाले कहते हैं—दोनोंकी एकतासे ही गौरांग महाप्रभु हुए हैं। दोनोंकी एकता लक्षणोंसे नहीं समझायी जा सकती। वहाँ कोई लक्षण, धर्म-गुण नहीं है, तब क्या समझाया जाय। वहाँ तो सारी बात एक केवल विशुद्ध प्रेम है। भगवान् ही प्रेम हैं, प्रेम ही भगवान् हैं। राधिकाजी कृष्ण हैं, कृष्ण ही राधिका हैं।

यह एकताकी स्थिति सबसे ऊँची है। ऐसी स्थिति जिसकी हो गयी, उसे कुछ भी करना-कराना नहीं रहता। उसके शरीरकी क्या अवस्था हो जाती है, बतलायी नहीं जा सकती। दर्पणमें सूर्य नहीं आता, बिम्ब आता है। हमलोगोंकी दृष्टिमें उसका शरीर प्रेममय हो जाता है। जैसे सूर्यके प्रकाशसे दर्पण चमचमाने लगता है, इसी प्रकार वह साक्षात् प्रेमकी मूर्ति हो जाता है। जैसे कोई कस्तूरी लेकर चले, तो उसकी सुगन्धके परमाणु फैल जाते हैं, चाहे किसीकी नासिका खराब हो तो भले ही उसे गन्ध न आये। इसी प्रकार वह चलता है तो प्रेमका वितरण करता हुआ चलता है। कहते हैं—गौरांग महाप्रभु चलते थे तो सब मार्ग प्रेममय हो जाते थे। उनके शरीरकी दशा बेदशा हो जाती थी, जिसे देखकर लोग प्रेमी हो जाते थे। ऐसा प्रेमी तो प्रेमका समूह होता है। उसे देखकर, स्पर्शकर ही लोग प्रेममय हो जाते हैं, उनकी ऐसी अलौकिक बात है।

प्रेरक प्रसंग—

सौ करोड़ रुपयोंका दान

(श्रीमहावीरप्रसादजी नेवटिया)

डोंगरेजी महाराज कथासे ही करीब एक अरब रुपये दान कर चुके होंगे, वे ऐसे कथावाचक थे। गोरखपुरके कैंसर अस्पतालके लिये एक करोड़ रुपये उनके चौपाटीपरके अन्तिम प्रवचनसे जमा हुए थे।

उनकी पत्नी आबूमें रहती थी, जब उनकी मृत्युके पाँचवें दिन उन्हें खबर लगी, तब वे अस्थियाँ लेकर गोदावरीमें विसर्जित करने मुम्बईके सबसे बड़े आदमी रति भाई पटेलके साथ गये थे। नासिकमें डोंगरेजीने रति भाईसे कहा कि 'रति, हमारे पास तो कुछ है नहीं, और इसका अस्थि-विसर्जन करना है। कुछ तो लगेगा ही, क्या करें?' फिर कहा—'हमारे पास इसका मंगलसूत्र एवं कर्णफूल हैं, इन्हें बेचकर जो रुपये मिलें, उन्हें अस्थि-विसर्जनमें लगा देते हैं।'

यह बात बताते हुए रति भाईने कहा, 'जिस समय हमने सुना, हम जीवित कैसे रह गये, आपसे कह नहीं सकते। बस, हमारा हार्ट फेल नहीं हुआ। जिन महाराजश्रीके इशारेपर लोग कुछ भी करनेको तैयार रहते थे, वह महापुरुष कह रहा है कि स्त्रीकी अस्थियोंके विसर्जनके लिये पैसा नहीं है और हम सामने खड़े सुन रहे हैं? हम फूट-फूटकर रो पड़े। धिक्कार है हमें और धन्य है भारतवर्ष, जहाँ ऐसे वैराग्यवान् महापुरुष जन्म लेते हैं।'

'मानस पुन्य होहिं नहिं पापा'

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

कलियुगका यह पुनीत प्रताप है कि इसमें मानस पुण्यकर्मोंका फल होता है, पापकर्मोंका नहीं, परंतु इन वचनोंका आशय और है। यदि मनसे होते रहेंगे, अर्थात् मानस कर्मका अभ्यास हो जायगा, तब देहेन्द्रियादिसे भी पापकर्म अवश्य ही हो जायँगे। अत: मनसे सर्वदा पापकर्मोंका परित्याग और अच्छे कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये, इससे बुरे कर्म होनेका अवकाश न रहेगा, शुद्ध कर्म ही शरीरसे भी होने लगेगा। 'मानस पुण्य होता है'—यह कहनेका प्रयोजन यही है कि प्राणीके मनसे पुण्यकर्म किया जाय, जिससे देहेन्द्रियादिसे भी पुण्यकर्म होने लग जायँ और 'मानस पाप नहीं होता'— यह कहनेका भी प्रयोजन यह है कि यदि असावधानीसे कुछ मानस पाप हो जाय तो भी देहेन्द्रियादिसे उन कर्मोंको न होने दे। ऐसा न समझ ले कि मनसे कर्म होनेपर पाप हो ही गया, फिर अब शरीरसे भी क्यों न कर लिया जाय; किंतु यह समझना उचित है कि पुण्य मानस भी होता है, अत: उसका संकल्प चलाये और पाप मानस नहीं होता, अत: यदि कथंचित् असावधानीसे मनद्वारा बुरा कर्म हो गया, तो भी देहादिसे बुरे कर्म न होने देकर बड़ी सावधानीसे मनद्वारा भी बुरे कर्मोंको न होने दे। यदि मानस पापकर्म करता रहेगा, तो अभ्यास बढ़ जानेपर न चाहते हुए भी बुरे कर्मोंको भी करना ही पड़ेगा। जैसे गमनजन्य वेगके बढ़ जानेपर गमनक्रियामें स्वतन्त्र गन्ताकी भी स्वतन्त्रता तिरोहित हो जाती है, वैसे ही मननजन्य वेगके बढ़ जानेपर मननक्रियामें स्वतन्त्र मन्ताकी भी मननमें स्वाधीनता छिप जाती है। इतना ही नहीं; किंतु पराधीनताका भी स्पष्ट अनुभव होने लगता है। इसी तरह बुरे कर्मोंके संकल्पोंके धाराबद्ध हो जानेपर उनका रोकना अपने वशमें नहीं रहता। इसलिये अच्छे कर्मोंके संकल्पको चलाना और बुरे कर्मोंके संकल्पोंको रोकना परमावश्यक है। संकल्प ही विश्वका मूल है, उसीपर उन्नति, अवनति— दोनों निर्भर है। इसीलिये शास्त्रोंने बार-बार उत्तम विचार और दृढ़ संकल्पकी महत्ता गायी है। बन्ध-मोक्षमें भी भावनाको ही प्रधानता दी गयी है। अपनेको कर्ता, भोक्ता, सुखी-दुखी, बद्ध माननेवाला प्राणी बद्ध रहता है और अपनेको नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त माननेवाला प्राणी मुक्त हो जाता है। मैं कुछ भी नहीं कर सकता, अत्यन्त दीन, हीन, प्राणी सर्वदा पुरुषार्थ लाभ नहीं कर सकता, भगवदाश्रित होकर भगवद्दत्त साधनोंका आलम्बन करके सब कुछ कर सकता हूँ, ऐसा निश्चयवान् प्राणी पुरुषार्थलाभ कर सकता है। इसलिये श्रुति प्रोत्साहन देती है—'**उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु। भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥**' यदि अनुष्ठान न भी हो सके तो भी सत्संकल्प परम लाभदायक होते हैं।

ईश्वर और योगीका संकल्प विचित्र सामर्थ्यसम्पन्न होता है। विभिन्न योगियोंने अपने संकल्पसे विश्वका निर्माण कर लिया है। परमेश्वरका ज्ञान या संकल्प ही उनका तप समझा जाता है। उनके ज्ञानरूप तपसे ही विश्व बन जाता है। उसी तरह वसिष्ठ आदि महर्षियोंने भी संकल्परूप तपस्यासे विश्वनिर्माणका अनुभव किया था। संकल्पकी विचित्रतासे ही जगत्की विचित्रता होती है। संकल्प ही बाह्य प्रपंचके रूपमें प्रकट होता है। जैसे काष्ठके भीतर विविध पुत्रिका विद्यमान रहती है, वही कारक-व्यापारसे प्रकट होती है, वैसे ही मनके संकल्पमें ही लीन सम्पूर्ण विश्व उचित कारण-कलापोंसे प्रकट हो जाता है। जैसे मिट्टी या सुवर्णके होनेपर ही घट, शरावादि और कटक, मुकुट, कुण्डलादि हो सकते हैं, अन्यथा नहीं, वैसे ही संकल्पके रहनेपर ही विश्वकी उपलब्धि होती है। जब मनकी हलचल है, तभी द्वैत है। मनकी हलचल न होनेपर विश्वका पता नहीं लगता। संकल्पकी अनेकरसतासे ही विश्वकी अनेकरसता भी अनुभूत होती है। इसलिये यद्यपि कहीं विश्वको अव्यय और सनातन कहा गया है— '**एषोऽश्वत्थः सनातनः**' '**अश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।**' तथापि विश्वकी क्षणभंगुरता अबाधित ही रहती है। कूटस्थ, नित्य, केवल एक आत्मा ही है। परिणामी पदार्थ प्रवाहरूपसे ही नित्य है। पूर्वरूप—परित्यागपूर्वक रूपान्तरापत्ति ही परिणाम है। अत: परिणामी पदार्थ कूटस्थरूपसे नित्य कदापि नहीं हो सकते, स्थूल जगत्में कभी-कभी हिमालयके स्थानमें समुद्र, समुद्रके स्थानमें हिमालय हो जाता है। मरुस्थानमें गंगा और गंगाके स्थानमें मारवाड़ दिखने लगता है। संकल्प या भावनाकी शुद्धतासे ही प्राणियोंकी शुद्धि और भावनाकी ही अपवित्रतासे अपवित्रता होती है। अत: हमें आज सबसे बड़ी आवश्यकता सद्विचार, सत्संकल्प बनानेकी है।

सच्ची तीर्थयात्रा

एक संत किसी प्रसिद्ध तीर्थस्थानपर गये थे। वहाँ एक दिन वे तीर्थस्नान करके रातको मन्दिरके पास सोये थे। उन्होंने स्वप्नमें देखा—दो तीर्थदेवता आपसमें बातें कर रहे हैं। एकने पूछा—

'इस वर्ष कितने नर-नारी तीर्थमें आये?'

'लगभग छ: लाख आये होंगे।' दूसरेने उत्तर दिया।

'क्या भगवान्ने सबकी सेवा स्वीकार कर ली?'

'तीर्थके माहात्म्यकी बात तो जुदा है; नहीं तो उनमें बहुत ही कम ऐसे होंगे, जिनकी सेवा स्वीकृत हुई हो।'

'ऐसा क्यों?'

'इसीलिये कि भगवान्में श्रद्धा रखकर पवित्र भावसे तीर्थ करने बहुत थोड़े लोग आये। जो आये, उन्होंने भी तीर्थोंमें नाना प्रकारके पाप किये।'

'कोई ऐसा भी मनुष्य है जो कभी तीर्थ नहीं गया, परंतु जिसको तीर्थोंका फल प्राप्त हो गया और जिसपर प्रभुकी प्रसन्नता बरस रही हो?'

कई होंगे, एकका नाम बताता हूँ, वह है रामू। यहाँसे बहुत दूर केरल देशमें रहता है।

इतनेमें संतकी नींद टूट गयी। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और इच्छा हुई केरल देशमें जाकर भाग्यवान् रामूका दर्शन करनेकी। संत उत्साही और दृढ़निश्चयी तो होते ही हैं, चल दिये और बड़ी कठिनतासे केरल पहुँचे। पता लगाते-लगाते एक गाँवमें रामूका घर मिल गया। संतको आया देख वह बाहर आया। संतने पूछा—'क्या करते हो भैया?'

'जूते बनाकर बेचता हूँ, महाराज!' रामूने उत्तर दिया।

'तुमने कभी तीर्थयात्रा भी की है?'

'नहीं महाराज! मैं गरीब आदमी तीर्थयात्राके लिये पैसा कहाँसे लाता? तीर्थका मन तो था परंतु जा नहीं सका।'

'तुमने और कोई बड़ा पुण्य किया है?'

'ना महाराज! मैं गरीब पुण्य कहाँसे करता?'

तब संतने अपना स्वप्न सुनाकर उससे पूछा—'फिर भगवान्की इतनी कृपा तुमपर कैसे हुई?'

'भगवान् तो दयालु होते ही हैं, उनकी कृपा दीनोंपर विशेष होती है।' (इतना कहते-कहते वह गद्गद हो गया), फिर बोला—'महाराज! मेरे मनमें वर्षोंसे तीर्थयात्राकी चाह थी। बहुत मुश्किलसे पेटको खाली रख-रखकर मैंने कुछ पैसे बचाये थे, मैं तीर्थयात्राके लिये जानेवाला ही था कि मेरी स्त्री गर्भवती हो गयी। एक दिन पड़ोसीके घरसे मेथीकी सुगन्ध आयी, मेरी स्त्रीने कहा—'मेरी इच्छा है मेथीका साग खाऊँ, पड़ोसीके यहाँ बन रहा है, जरा माँग लाओ।' मैंने जाकर साग माँगा। पड़ोसिन बोली—'ले जाइये, परंतु है यह बहुत अपवित्र। हमलोग सात दिनोंसे सब-के-सब भूखे थे, प्राण जा रहे थे। एक जगह एक मुर्देपर चढ़ाकर साग फेंका गया था, वही मेरे पति बीन लाये। उसीको मैं पका रही हूँ।' (रामू फिर गद्गद होकर कहने लगा) 'मैं उसकी बात सुनकर काँप गया। मेरे मनमें आया, पड़ोसी सात-सात दिनोंतक भूखे रहें और हम पैसे बटोरकर तीर्थयात्रा करने जायँ। यह तो ठीक नहीं है। मैंने बटोरे हुए सब पैसे आदरके साथ उनको दे दिये। वह परिवार अन्न-वस्त्रसे सुखी हो गया। रातको भगवान्ने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'बेटा! तुझे सब तीर्थोंका फल मिल गया, तुझपर मेरी कृपा बरसेगी।' 'महाराज! तबसे मैं सचमुच सुखी हो गया। अब मैं तीर्थस्वरूप भगवान्को अपनी आँखोंके सामने ही निरन्तर देखा करता हूँ और बड़े आनन्दसे दिन कट रहे हैं।'

रामूकी बात सुनकर संत रो पड़े। उन्होंने कहा—'सचमुच तीर्थयात्रा तो तैने ही की है।'

अनन्यताकी महत्ता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्रश्न है कि भगवत्प्रेमके पथमें अनन्यताकी कितनी महत्ता है? तो सारी अनन्यताकी ही महत्ता है, लेकिन उसमें एक बात है, जितने भी अपने इष्टके अतिरिक्त दूसरे रूप हैं और जिनको दूसरे साधक इष्ट मानते हैं, प्रेम करते हैं, उनमें न तो हीनताका भाव करे, न उनको दूसरा माने और न उनको भजे—फिर कैसे करे?

जैसे एक आदमी भगवान् रामचन्द्रका उपासक है, एक आदमी भगवान् शंकरका उपासक, एक आदमी भगवान् श्रीकृष्णका उपासक है और एक आदमी निर्गुण ब्रह्मका उपासक है। तो वह रामका उपासक क्या समझे? रामका उपासक ये भी न समझे कि ब्रह्म, शिव और कृष्ण—ये उससे अलग हैं और ये भी न समझे कि ये उससे नीचे हैं और ये भी न समझे कि अलग-अलग हैं और ये भी न समझे कि हमको इनकी उपासना करनी चाहिये—तो क्या समझे? वह यह समझे कि हमारे ही राम, हमारे ही राघवेन्द्र वहाँपर श्रीकृष्ण बने हुए हैं और श्रीकृष्णके नामसे पूजनेवाले हमारे रामको ही पूजते हैं, वहाँ हमारे राम शिव बने हुए हैं और शिवके उपासक शिवरूपसे हमारे ही रामको पूजते हैं, वहाँ हमारे राम निर्गुण ब्रह्म बने हुए हैं और निर्गुण ब्रह्मके उपासक हमारे ही रामकी उपासना कर रहे हैं। इसलिये न तो वे अलग हैं, न वे छोटे हैं और जो हमारे ही राम हैं, हमें जो रूप प्यारा, जिसकी हम उपासना करते हैं—उसकी हम क्यों न करें? जरा सोचिये, क्या वे अलग-अलग हैं? जरा सोचिये, भगवान् सौ-पचास नहीं होते, सत्य एक है, भगवान् एक है, परंतु यदि हम अपने भगवान्के सिवाय दूसरे सबके उपास्य भगवान्को भगवान् नहीं मानते तो हमारे भगवान् हमारी छोटी-सी सीमाके अन्दर बद्धमूल होकर अल्प बन जाते हैं और जो अल्प है, वह भगवान् नहीं, ब्रह्म नहीं और यदि हम उन सबको अलग-अलग भगवान् मानते हैं, तो इतने भगवान् हो जाते हैं कि सभी छोटे हो गये। तब वे भी भगवान् नहीं रहे और अगर हम उपासनाको बदलते हैं तो हम कहींपर जाकर टिकते नहीं, तो भी हमारे लिये अनन्यता नहीं रही और पागलपन हो गया और यदि हम उन्हें छोटा-बड़ा मानते हैं, तो वे हमारेवालेको छोटा मानेंगे और हम उनकेवालेको छोटा मानेंगे—तो हमने भगवान्को छोटा कर दिया।

इसलिये अनन्यताका अर्थ ये है कि दूसरेके भगवान् हमारे भगवान्से अलग नहीं, दूसरेके भगवान् हमारे भगवान्से छोटे नहीं, दूसरेके भगवान् हमारे ही भगवान् हैं और दूसरेके भगवान् उस रूपमें हमारे उपास्य नहीं; इस प्रकारसे अन्य इष्टोंके प्रति भाव करे और एक बात इसमें और है कि सन्तोंमें क्या भाव करे?

ऐसी बात है कि सन्त सभी भगवद्रूप हैं, अगर सन्त हैं। यों तो सन्तकी बात क्या, नरकका कीड़ा भी भगवद्रूप है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि नरकके कीड़ेसे भी घृणा न करे, नरकका कीट भी हमारे लिये पूज्य है। भगवान्के नाते ***'बंदइ सभी भगवान्के नाते'*** जितने भी जगत्में चराचर भूत प्राणी हैं, वे सबके सब भगवद्रूप **'यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः'** सबको अनन्य भावसे प्रणाम करें।

अब रही सन्तकी बात, तो सन्तमें जिस सन्तका जो अनुगत हो, सन्तमें भगवद्बुद्धि करना, गुरुमें भगवद्बुद्धि करना पाप नहीं, पर गुरु कहीं अपनेको भगवान् बताकर बोले कि भगवान्को तो हटा दो और हमको बैठा लो यहाँपर, तो ये जरा सावधानीकी चीज है। यहाँपर तो सावधान होना चाहिये, ऐसी बात ये कह क्यों रहा है? सन्तके अनुगत हो, अपने सन्तके अनुगत हो, उसका कहा मानो, उस गुरुके मनके

अनुसार करे, पर दूसरे सन्तोंमें अवज्ञा-बुद्धि न करे। एक सन्त आये हमारे यहाँ, हम तो ऐसे कसौटी कस लेते हैं। एक सन्त मान लीजिये आये और उनको सर्दी लग रही थी। उन्होंने कहा—'हमें तो चाय पीनी है और चायमें जरा-सा अदरक डाल देना।' बोले ये तो आसक्तिवाले हैं, ये विषयासक्तिवाले सन्त हैं। अब इस प्रकारसे हम सन्तको तौलेंगे तो भगवान् भी शायद हमारी प्रेरणामें न जँचे, समझे! तो सच्ची बात ये कि सन्तको तौलने न जाय, हो सकता है कहीं धोखा भी हो, पर अगर हमारी ठीक सन्तबुद्धि है तो धोखेसे हमको भगवान् बचा लेंगे, जान-बूझकर धोखेमें हम पड़े हैं, तो यह वही होगा कि वहाँ कहीं-न-कहीं हमारा भी व्यक्तिगत स्वार्थ होगा, छिपा हुआ भी। भई! सन्तके साधनसे हमको पूजा मिलेगी, मान मिलेगा, भोग मिलेगा तो क्यों न समर्थन करे? वहाँ तो वह दोषी है और यदि वह ठीक-ठीक सन्त मानता है तो पाषाणमें—पत्थरमें हम भगवान्‌को मानकर भगवान्‌को पा लेते हैं, किसी चेतनमें चाहे उसके आचरण कैसे भी हों, हम अगर भगवान्‌को मानेंगे, तो वे अपने आचरणोंसे भले ही दूषित हों, पर हमारे लिये उसमें भगवान् प्रकट हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं, यह श्रद्धा-विश्वास अपनी बात है।

किसीको तौले नहीं, जहाँ दोष दिखे, वहाँ अपने अलग हो जाय और अपनी कसौटी ये करे, बड़ी सुन्दर कसौटी है, सार्वभौम—जिसके संगसे हमारे अन्दर भगवद्भावकी वृद्धि होती हो, दैवीय-सम्पत्ति बढ़ती हो, तो भगवान्‌का आश्रय करके अपने सन्तके अनुगत रहे और दूसरे सन्तोंकी समालोचना न करे।

तेरे भावे जो करो, ये भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठकर, अपनो भवन बुहार॥

साधकके लिये आवश्यक है, अब जो प्रचारक हैं, आचार्य हैं—उनकी बातें वे जानें। उनकी बात कहनेका, समालोचना करनेका हमें अधिकार नहीं; क्योंकि पेशा तो उपदेशकका मैं भी कर रहा हूँ; पर नालायक उपदेशक हूँ, ऐसी चीज है। तो उसका तो अधिकार नहीं, इसलिये किसी भी भगवद्स्वरूपमें और किसी भी सन्तमें अवज्ञा-बुद्धि न करे। भगवान्‌में दोषबुद्धि कभी होनी नहीं, चाहे वे शिव हों, राम हों, विष्णु हों, चाहे श्रीकृष्ण हों या देवी हों—सन्तोंमें दोषबुद्धि हमारी हो सकती है कभी? वहाँपर सन्तको दोषी न बताकर अपनेको बचा ले, अपनेको अलग रखे। अपनेको दोषका ग्रहण यदि कोई घरका भी कहे, तब भी न करे, माता-पिताकी आज्ञा माननी सर्वथा उचित है, पतिकी आज्ञा मानना पत्नीके लिये सर्वथा उचित है, पर वहाँ उसके दो भेद होते हैं—एक तो होता है वह बहुत कम होता है, वह वैसी स्थिति कि जहाँ माता-पिता, पति, गुरु जो कुछ भी कह दें, वे भगवद्वाक्य हैं—ऐसी बुद्धि। वहाँ तो और चीज होती है और जहाँ हम अच्छा-बुरा सोचते हैं, अच्छा-बुरा सोचनेके लिये हमारा ब्रेन काम करता है, वहाँपर हमें पिता भी कहे कि तुम खून कर दो अमुकका, पति पत्नीसे कहे कि तुम व्यभिचार करो तो उसकी बात न माने। वहाँतक बात माननेमें आपत्ति नहीं, जहाँतक आज्ञा और सम्मति देनेवाले का बुरा न होता हो, अपना बुरा हो जाता हो, पर जिस आज्ञाके पालन करनेमें आज्ञा देनेवालेके लिये भी अशुभ फल पैदा होता है, वह आज्ञा गुरुकी भी न माने तो कोई आपत्तिकी बात नहीं। बुरी बात किसीकी भी न माने, इसमें कोई आपत्तिकी बात नहीं, परंतु किसीमें दोषबुद्धि न करे, अवज्ञा-बुद्धि न करे, अगर न दिखे अपनेको तो योगदर्शनके अनुसार उपेक्षा-बुद्धि कर ले, मैत्री-करुणा-मुदिता जहाँ न बैठती हो, वहाँ उपेक्षा करे, उससे अलग रहे, अपनेको बचाये रखे और यदि पास चला जाय तो भगवद्बुद्धि करे। इसमें अपना लाभ है। मेहतरमें हम भगवद्बुद्धि करें तो सचमुच मेहतर हमारे लिये भगवान् है, इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं।

सनातन धर्मके अकाट्य मन्त्र-प्रयोग

(ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित पूर्वाम्नाय गोवर्धन-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)

'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः'—

—इस मन्त्रका निरन्तर जप करनेसे हर प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं। जबतक रोग न मिटे, श्रद्धापूर्वक जप करता रहे। इस मन्त्रका सतत जप करते रहनेसे असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। यह अनुभूत प्रयोग है।

गच्छ गौतम शीघ्रं त्वं ग्रामेषु नगरेषु च।
आसनं भोजनं यानं सर्वं मे परिकल्पय॥

—इस मन्त्रका जप करनेसे सभी तरहसे साधन सुलभ होकर यात्रा सुखद होती है।

सर्पापसर्प भद्रं ते गच्छ सर्प महाविष।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर॥
आस्तीकवचनं स्मृत्वा यः सर्पो न निवर्तते।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशपावृक्षको यथा॥

जब कभी सर्प दिखलायी दे, उसी समय इस मन्त्रको जोरसे सर्पके सामने कहना चाहिये। इसे सुनते ही सर्प तत्क्षण लौट जायगा तथा किसीको नहीं काटेगा। रात्रिमें सोते समय भी इस मन्त्रको कहा जाता है। इसे कण्ठस्थ कर लेना चाहिये।

तिस्रो भार्याः कफल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती।
तासां स्मरणमात्रेण चौरो गच्छति निष्फलः॥
कफल्ल कफल्ल कफल्ल।

रात्रिमें सोते समय इस मन्त्रको कहकर और तीन बार ताली बजाकर सोये। इससे चोरी नहीं होगी। सोनेसे पूर्व द्वारकी साँकल बन्द करते समय भी यथाशक्ति इसका जप करनेसे चोर आदि रात्रिमें आयेगा भी तो उसे खाली हाथ लौटना पड़ेगा।

आदिचौरकफल्लस्य ब्रह्मदत्तवरस्य च।
तस्य स्मरणमात्रेण चौरो विशति न गृहे॥

सोते समय घरके ताले लगाते हुए इस मन्त्रके स्मरणमात्रसे चोर घरमें आयेगा ही नहीं।

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः॥

यदि किसीको नींद न आती हो तो हाथ-पैर धोकर सोते समय इस मन्त्रका उच्चारण करते रहें। दो-तीन दिन प्रयोगके बाद ही शीघ्र सुखद निद्रा आने लगेगी।

वाराणस्यां दक्षिणे तु कुक्कुटो नाम वै द्विजः।
तस्य स्मरणमात्रेण दुःस्वप्नः सुखदो भवेत्॥

यदि किसीको बुरे स्वप्न आते हों तो रात्रिमें हाथ-पैर धोकर शान्त-चित्तसे पूर्वमुख आसनपर बैठकर प्रतिदिन इस मन्त्रका १०८ बार जप करे, दुःस्वप्न बन्द हो जायँगे तथा उनके फल भी अच्छे होंगे।

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

सभी प्रकारके रोगकी निवृत्तिके लिये उपर्युक्त श्लोकका अधिकाधिक जप करे। जो लोग श्लोकका पाठ करनेमें असमर्थ हों, वे **'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः।'**—इन तीन मन्त्रोंका ही जप करें।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

—इस मन्त्रका प्रतिदिन १०८ बार जप करनेसे पारिवारिक कलहकी निवृत्ति होगी।

साधकोंके प्रति—

[धर्मका सार]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

(पद्मपुराण, सृष्टि० १९। ३५५-३५६)

धर्मसर्वस्व अर्थात् पूरा-का-पूरा धर्म थोड़ेमें कह दिया जाय तो वह इतना ही है कि जो बात अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरोंके प्रति मत करो। इसमें सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार आ जाता है। जैसे, आपका यह भाव रहता है कि प्रत्येक आदमी मेरी सहयाता करे, मेरी रक्षा करे, मुझपर विश्वास करे, मेरे अनुकूल बने और दूसरा कोई भी मेरे प्रतिकूल न रहे, मुझे कोई ठगे नहीं, मेरी कोई हानि न करे, मेरा कोई निरादर न करे, तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं दूसरेकी सहायता करूँ, दूसरेकी रक्षा करूँ, दूसरेपर विश्वास करूँ, दूसरेके अनुकूल बनूँ और किसीके भी प्रतिकूल न रहूँ, किसीको ठगूँ नहीं, किसीको कोई हानि न करूँ, किसीका निरादर न करूँ, आदि-आदि। इस प्रकार आप स्वयं अनुभवका आदर करें तो आप पूरे धर्मात्मा बन जायँगे।

मेरी कोई हानि न करे—यह अपने हाथकी बात नहीं है, पर मैं किसीकी हानि न करूँ—यह अपने हाथकी बात है। सब-के-सब मेरी सहायता करें—यह मेरे हाथकी बात नहीं है, पर इस बातसे यह सिद्ध होता है कि मैं सबकी सहायता करूँ। मेरे साथ जिन-जिनका काम पड़े, उनकी सहायता करनेवाला मैं बन जाऊँ। मुझे कोई बुरा न समझे—इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि मैं किसीको बुरा न समझूँ। यह अनुभवसिद्ध बात है। कोई भी मुझे बुरा न समझे—यह अपने हाथकी बात नहीं है, पर मैं किसीको बुरा न समझूँ—यह अपने हाथकी बात है। जो अपने हाथकी बात है, उसे करना ही धर्मका अनुष्ठान है। ऐसा करनेवाला पूरा धर्मात्मा बन जाता है। जो धर्मात्मा होता है, उसे सब चाहते हैं, उसकी सबको आवश्यकता रहती है। आदमी किसे नहीं चाहता? जो स्वार्थी होता है, मतलबी होता है, दूसरोंकी हानि करता है, उसे कोई नहीं चाहता; परंतु जो तनसे, मनसे, वचनसे, धनसे, विद्यासे, योग्यतासे, पदसे, अधिकारसे दूसरोंका भला करता है, जिसके हृदयमें सबकी सहायता करनेका, सबको सुख पहुँचानेका भाव है, उसे सब लोग चाहने लगते हैं। जिसे सब लोग चाहते हैं, वह अधिक सुखी रहता है। कारण कि अभी अपने सुखके लिये अकेले हमीं उद्योग कर रहे हैं तो उसमें सुख थोड़ा होगा, पर दूसरे सब-के-सब हमारे सुखके लिये उद्योग करेंगे तो हम सुखी भी अधिक होंगे और लाभ भी अधिक होगा।

सब-के-सब हमारे अनुकूल कैसे बनें? कि हम किसीके भी प्रतिकूल न बनें, किसीके भी विरुद्ध काम न करें। अपने स्वार्थके लिये अथवा अभिमानमें आकर हम दूसरेका निरादर कर दें, तिरस्कार कर दें, अपमान कर दें और दूसरेको बुरा समझें तो फिर दूसरा हमारा आदर-सम्मान करे, हमें अच्छा समझे—इसके योग्य हम नहीं हैं। जबतक हम किसीको बुरा आदमी समझते हैं; तबतक हमें कोई बुरा आदमी न समझे—इस बातके हम हकदार नहीं होते। इसके हकदार हम तभी होते हैं, जब हम किसीको बुरा न समझें। अब कहते हैं कि बुरा कैसे न समझें? उसने हमारा बुरा किया है, हमारे धनकी हानि की है, हमारा अपमान किया है, हमारी निन्दा की है! तो इसपर आप थोड़ी गम्भीरतासे विचार करें। उसने हमारी जो हानि की है, वह होनेवाली थी। हमारी हानि न होनेवाली हो और दूसरा हमारी हानि कर दे—यह तो हो ही नहीं सकता। परमात्माके राज्यमें हमारी जो हानि होनेवाली नहीं थी, उस परमात्माके रहते हुए दूसरा हमारी वह हानि कैसे कर देगा? हमारी तो वही हानि

हुई, जो अवश्यम्भावी थी। दूसरा उसमें निमित्त बनकर पापका भागी बन गया; अत: उसपर दया करनी चाहिये। यदि वह निमित्त न बनता तो भी हमारी हानि होती, हमारा अपमान होता। वह स्वयं हमारी हानि करके, हमारा अपमान करके पापका भागी बन गया, तो वह भूला हुआ है। भूले हुएको रास्ता दिखाना हमारा काम है या धक्का देना? कोई खड्डेमें गिरता हो तो उसे बचाना हमारा काम है या उसे धक्का देना? अत: उस बेचारेको बचाओ कि उसने जैसे मेरी हानि की है, वैसे किसी औरकी हानि न कर दे। ऐसा भाव जिसके भीतर होता है, वह धर्मात्मा होता है, महात्मा होता है, श्रेष्ठ पुरुष होता है।

'गीत-गोविन्द' की रचना करनेवाले पण्डित जयदेव एक बड़े अच्छे संत हुए हैं। एक राजा उनपर बहुत भक्ति रखता था और उनका सब प्रबन्ध अपनी ओरसे ही किया करता था। जयदेवजी त्यागी थे और गृहस्थ होते हुए भी 'मुझे कुछ मिल जाय, कोई धन दे दे'— ऐसा नहीं चाहते थे। उनकी स्त्री भी बड़ी विलक्षण पतिव्रता थी; क्योंकि उनका विवाह भगवान्‌ने करवाया था, वे विवाह करना नहीं चाहते थे। एक दिनकी बात है, राजाने उन्हें बहुत-सा धन दिया, लाखों रुपयोंके रत्न दिये। उन्हें लेकर वे वहाँसे रवाना हुए और घरकी ओर चले। रास्तेमें जंगल था। डाकुओंको इस बातका पता लग गया। उन्होंने जंगलमें जयदेवको घेर लिया और उनके पास जो धन था, वह सब छीन लिया। डाकुओंके मनमें आया कि यह राजाका गुरु है, कहीं जीता रह जायगा तो हमलोगोंको पकड़वा देगा। अत: उन्होंने जयदेवके दोनों हाथ काट लिये और उन्हें एक सूखे कुएँमें गिरा दिया। जयदेव कुएँके भीतर पड़े रहे। एक-दो दिनके बाद राजा जंगलमें आया। उसके आदमियोंने पानी लेनेके लिये कुएँमें लोटा डाला तो वे कुएँमेंसे बोले कि 'भाई! ध्यान रखना, मुझे लग न जाय। इसमें जल नहीं है, क्या करते हो?' उन लोगोंने आवाज सुनी तो बोले कि यह आवाज तो पण्डितजीकी है! पण्डितजी यहाँ कैसे आये! उन्होंने राजासे कहा कि 'महाराज! पण्डितजी तो कुएँमेंसे बोल रहे हैं।' राजा वहाँ गया। रस्सा डालकर उन्हें कुएँमेंसे निकाला, तो देखा कि उनके दोनों हाथ कटे हुए हैं। उनसे पूछा गया कि यह कैसे हुआ? तो वे बोले कि 'भाई! देखो, जैसा हमारा प्रारब्ध था, वैसा हो गया।' उनसे बहुत कहा गया कि बताओ तो सही, कौन है, कैसा है; परंतु उन्होंने कुछ नहीं बताया, यही कहा कि हमारे कर्मोंका फल है। राजा उन्हें अपने घरपर ले गये। उनकी मलहम-पट्टी की, दवा की और खिलाने-पिलाने आदि सब तरहसे उनकी सेवा की।

एक दिनकी बात है, जिन्होंने जयदेवके हाथ काटे थे, वे चारों डाकू साधुके वेशमें कहीं जा रहे थे। उन्हें राजाने भी देखा और जयदेवने भी। जयदेवने उन्हें पहचान लिया कि ये वे ही डाकू हैं। उन्होंने राजासे कहा कि 'देखो, राजन्! तुम धन लेनेके लिये बहुत आग्रह किया करते हो। यदि धन देना हो तो वे जो चारों आदमी जा रहे हैं, वे मेरे मित्र हैं, उन्हें धन दे दो। मुझे धन दो या मेरे मित्रोंको दो, एक ही बात है।' राजाको आश्चर्य हुआ कि पण्डितजीने कभी आयु-भरमें किसीके प्रति 'आप दे दो' ऐसा नहीं कहा, पर आज इन्होंने कह दिया है! राजाने उन चारों व्यक्तियोंको बुलवाया। वे आये और उन्होंने देखा कि हाथ कटे हुए पण्डितजी वहाँ बैठे हैं तो उनके प्राण सूखने लगे कि अब कोई 'विपत्ति' आयेगी! अब ये हमें मरवा देंगे! राजाने उनके साथ बड़े आदरका बरताव किया और उन्हें खजानेमें ले गया। उन्हें सोना, चाँदी, मुहरें आदि खूब दिये। लेनेमें तो उन्होंने खूब धन ले लिया, पर पासमें बोझ अधिक हो गया। अब क्या करें? कैसे ले जायँ? तब राजाने अपने आदमियोंसे कहा कि इन्हें पहुँचा दो। धनको सवारीमें रखवाया और सिपाहियोंको साथमें भेज दिया। वे जा रहे थे। रास्तेमें उन सिपाहियोंमें जो बड़ा

अधिकारी था, उसके मनमें आया कि पण्डितजी किसीको कभी देनेके लिये कहते ही नहीं और आज देनेके लिये कह दिया तो बात क्या है? उसने उनसे पूछा कि 'महाराज! आप बताओ कि आपने पण्डितजीका क्या उपकार किया है? पण्डितजीके साथ आपका क्या सम्बन्ध है? आज हमने पण्डितजीके स्वभावसे विरुद्ध बात देखी है। बहुत वर्षोंसे देखता हूँ कि पण्डितजी किसीको ऐसा नहीं कहते कि तुम इसे दे दो, पर आपके लिये ऐसा कहा, तो बात क्या है?' वे चारों आपसमें एक-दूसरेको देखने लगे, फिर बोले कि 'ये एक दिन मौतके मुँहमें जा रहे थे तो हमने इन्हें मौतसे बचाया था। इससे इनके हाथ ही कटे, नहीं तो गला कट जाता! उस उपकारका ये बदला चुका रहे हैं।'

उनकी इतनी बात पृथ्वी सह नहीं सकी। पृथ्वी फट गयी और वे चारों व्यक्ति पृथ्वीमें समा गये! सिपाहियोंको बड़ी कठिनाई हो गयी कि अब धन कहाँ ले जायँ! वे तो पृथ्वीमें समा गये! अब वे वहाँसे लौट पड़े और आकर सब बातें बतायीं। उनकी बात सुनकर पण्डितजी जोर-जोरसे रोने लगे। रोते-रोते आँसू पोंछने लगे तो उनके हाथ पूरे हो गये।

यह देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या तमाशा है! हाथ कैसे आ गये! राजाने सोचा कि वे इनके कोई घनिष्ठ मित्र थे, इसलिये उनके मरनेसे पण्डितजी रोते हैं। उनसे पूछा कि 'महाराज! बताओ तो सही, बात क्या है? हमें तो आप उपदेश देते हैं कि शोक नहीं करना चाहिये, चिन्ता नहीं करनी चाहिये, फिर मित्रोंका नाश होनेसे आप क्यों रोते हैं? शोक क्यों करते हैं?' तब वे बोले कि 'ये जो चार आदमी थे, इन्होंने ही मुझसे धन छीन लिया और हाथ काट दिया था।'

राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला—'महाराज, हाथ काटनेवालोंको आपने मित्र कैसे कहा?' जयदेव बोले—'राजन्! देखो, एक जबानसे उपदेश देता है और एक क्रियासे उपदेश देता है। क्रियासे उपदेश देनेवाला ऊँचा होता है। मैंने जिन हाथोंसे आपसे धन लिया, रत्न लिये, वे हाथ काट देने चाहिये। यह काम उन्होंने कर दिया और धन भी ले गये। अतः उन्होंने मेरा उपकार किया, मुझपर कृपा की, जिससे मेरा पाप कट गया। इसलिये वे मेरे मित्र हुए। रोया मैं इस बातके लिये कि लोग मुझे संत कहते हैं, अच्छा पुरुष कहते हैं, पण्डित कहते हैं, धर्मात्मा कहते हैं, किंतु मेरे कारण उन बेचारोंके प्राण चले गये! अतः मैंने भगवान्‌से रोकर प्रार्थना की कि हे नाथ! मुझे लोग अच्छा आदमी कहते हैं तो बड़ी भूल करते हैं! मेरे कारण आज चार आदमी मर गये तो मैं अच्छा कैसे हुआ? मैं बड़ा दुष्ट हूँ। हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा करो। अब मैं क्या कर सकता हूँ।'

राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला—'महाराज! आप अपनेको अपराधी मानते हैं कि चार आदमी मेरे कारण मर गये, तो फिर आपके हाथ कैसे आ गये?' वे बोले कि 'भगवान् अपने जनके अपराधोंको, पापोंको, अवगुणोंको देखते ही नहीं! उन्होंने कृपा की तो हाथ आ गये।' राजाने कहा—'महाराज! उन्होंने आपको इतना दुःख दिया तो आपने उन्हें धन क्यों दिलवाया?' वे बोले—'देखो राजन्! उन्हें धनका लोभ था और लोभ होनेसे वे और किसीके हाथ काटेंगे; अतः विचार किया

कि आप धन देना ही चाहते हैं तो उन्हें इतना धन दे दिया जाय कि जिससे बेचारोंको कभी किसी निर्दोषकी हत्या न करनी पड़े। मैं तो सदोष था, इसलिये मुझे दुःख दे दिया; परंतु वे किसी निर्दोषको दुःख न दे दें, इसलिये मैंने उन्हें भरपेट धन दिलवा दिया।' राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ! उसने कहा कि 'आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया?' वे बोले कि 'महाराज! यदि पहले बताता तो आप उन्हें दण्ड देते। मैं उन्हें दण्ड नहीं दिलाना चाहता था। मैं तो उनकी सहायता करना चाहता था; क्योंकि उन्होंने मेरे पापोंका नाश किया, मुझे क्रियात्मक उपदेश दिया। मैंने तो अपने पापोंका फल भोगा, इसलिये मेरे हाथ कट गये। नहीं तो भगवान्‌के दरबारमें, भगवान्‌के रहते हुए कोई किसीको अनुचित दण्ड दे सकता है? कोई नहीं दे सकता। यह तो उनका उपकार है कि मेरे पापोंका फल भुगताकर मुझे शुद्ध कर दिया।'

इस कथासे सिद्ध होता है कि सुख या दुःखको देनेवाला कोई दूसरा नहीं है; कोई दूसरा सुख-दुःख देता है—यह समझना कुबुद्धि है—**'सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।'** (अध्यात्मरामायण २।६।६) दुःख तो हमारे प्रारब्धसे मिलता है, पर उसमें कोई निमित्त बन जाता है तो उसपर दया करनी चाहिये कि बेचारा व्यर्थमें ही पापका भागी बन गया! रामायणमें आता है कि वनवासके लिये जाते समय रात्रिमें श्रीरामजी निषादराज गुहके यहाँ ठहरे। निषादराजने कहा—

कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥

(रा०च०मा० २।९१)

तब लक्ष्मणजीने कहा—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

(रा०च०मा० २।९२।४)

अतः दूसरा मुझे दुःख देता है, मेरा अपमान करता है, मेरी निन्दा करता है, मुझे कष्ट पहुँचाता है, मेरी हानि करता है—ऐसा जो विचार आता है, यह कुबुद्धि है, नीची बुद्धि है। वास्तवमें दोष उसका नहीं है, दोष है हमारे पापोंका, हमारे कर्मोंका। इसलिये परमात्माके राज्यमें कोई हमें दुःख दे ही नहीं सकता। हमें जो दुःख मिलता है, वह हमारे पापोंका ही फल है। पापका फल भोगनेसे पाप कट जायगा और हम शुद्ध हो जायँगे। अतः कोई हमारी हानि करता है, अपमान करता है, निन्दा करता है, तिरस्कार करता है, वह हमारे पापोंका नाश कर रहा है—ऐसा समझकर उसका उपकार मानना चाहिये, प्रसन्न होना चाहिये।

किसीके द्वारा हमें दुःख हुआ तो वह हमारे प्रारब्धका फल है, परंतु यदि हम उस आदमीको खराब समझेंगे, अन्य समझेंगे, उसकी निन्दा करेंगे, तिरस्कार करेंगे, दुःख देंगे, दुःख देनेकी भावना करेंगे तो अपना अन्तःकरण मैला हो जायगा, हमारी हानि हो जायगी! इसलिये सन्तोंका यह स्वभाव होता है कि दूसरा उनकी बुराई करता है, तो भी वे उसकी भलाई करते हैं—

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

(रा०च०मा० ५।४१।७)

ऐसा सन्त-स्वभाव हमें बनाना चाहिये। अतः कोई दुःख देता है तो उसके प्रति सद्भावना रखो, उसे सुख कैसे मिले—यह भाव रखो। उसमें दुर्भावना करके मनको मैला कर लेना मनुष्यता नहीं है। इसलिये तनसे, मनसे, वचनसे सबका हित करो, किसीको दुःख न दो। जो तन-मन-वचनसे किसीको दुःख नहीं देता, वह इतना शुद्ध हो जाता है कि उसका दर्शन करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं—

तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दुःख।
तुलसी पातक हरत है, देखत उसको मुक्ख॥

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

भगवत्कथासे प्रेतोद्धार

(श्रीरामकेदारजी शर्मा)

अनेक प्रकारकी विचित्रताओंसे भरा हुआ यह विशाल विश्व उस लीलामय प्रभुका एक इन्द्रजाल ही है। दिन-रात आँखोंके सामने होनेवाली उनकी अद्भुत लीलाओंको देखते हुए भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं, उस प्रभुकी सत्ता एवं उसके सनातन विधानोंपर आस्था नहीं होती, विश्वास नहीं होता। फलतः, हम स्वेच्छाचारितावश नीतिपथसे विमुख हो अपना जीवन जन्म-जन्मान्तरके लिये घोर संकटमें डाल लेते हैं। प्रभुकी विचित्र लीलाओंका प्रत्यक्ष अनुभवकर नीचे कुछ पंक्तियाँ पाठकों, विशेषकर उन महानुभावोंको ध्यानाकर्षित करनेके लिये उपस्थित की जाती हैं, जिन्हें प्रभु अथवा उनकी लीलाओंपर कतई विश्वास नहीं होता।

घटना लगभग पचपन वर्ष पहलेकी है। मेरे परिवारका नियम था कि प्रतिदिन सन्ध्या-समय बच्चे-बूढ़े एक साथ बैठकर प्रार्थना करते थे। बादमें रामायण, भागवत आदि किसी-न-किसी ग्रन्थकी कथा भी प्रायः होती थी, जिसे मेरे पूज्य वृद्ध पिताजी तथा कुछ अन्य श्रद्धालु नर-नारी भी सुना करते थे। एक दिन प्रार्थना समाप्त होते ही मेरी ग्यारह सालकी बच्ची जोरोंसे रोने लगी। हमलोगोंके बहुत समझानेपर भी चुप नहीं होती थी। मैंने रंजमें उसे बहुत डाँटा। फिर तो वह बिलकुल चुप हो गयी और पूछनेपर कि 'क्यों रो रही थी?' उसने कहा—'कहाँ रोती थी?' फिर उसे रामायण पढ़नेका आदेश देकर (क्योंकि उसे नित्य रामायण ही पढ़ायी जाती थी) मैं कुछ स्वाध्यायमें लग गया। रामायण पढ़नेके सिलसिलेमें ही कुछ देर बाद वह आकर मेरे पूज्य पिताजीसे रोती बाहर रास्तेकी ओर इशाराकर कहने लगी—'बाबा, देखिये, वह वहाँपर खड़ी औरत मुझे पढ़नेसे मना करती है, उसे मारिये न!' मैं यह सुनकर तुरंत वहाँ गया। देखा, रास्तेपर कोई औरत कहीं न थी। आश्चर्य हुआ। फिर उसे ले जाकर कमरेमें बैठाया, जहाँ पूज्य पिताजीको श्रीरामचरितमानसकी कथा सुना रहा था। यों तो बच्चीको कथा सुननेका शौक नहीं। अगर कभी जबरन बैठाया भी तो वह सो जाती या वहाँसे भाग जाया करती, परंतु आज ऐसी बात नहीं थी। आज वह सावधानीसे पालथी लगा कथा सुन रही थी। मैंने सशंक हो बीचमें ही बच्चीसे (क्योंकि एक बार दो-तीन मास पूर्व रात्रिमें सुप्तावस्थामें ही वह अनायास रोने-चिल्लाने लगी थी, तो घरवालोंने किसी झाड़-फूँकवालेको बुलाकर दिखाया था) पूछा—'तुम कौन हो? कहाँ रहती हो? कहाँसे, किसलिये आयी हो?' तो उसने उत्तर दिया—'मैं यहीं पासमें ही रहती हूँ, बहुत दूरसे अभी आयी हूँ, एक जगह कथा सुनने गयी थी, वहाँ अच्छी कथा नहीं हो रही थी। अतः यहाँ सुनने चली आयी।' 'फिर कभी आयेगी?' मेरे प्रश्न करनेपर उसने उत्तर दिया—'एक दिन और आऊँगी।' मैंने कहा—'जब भागवतकी कथा होगी, तब आना।' फिर मैं कथा कहने लगा और समाप्त होनेपर मैंने कहा—'अब कथा समाप्त हो गयी।' तो, 'अब जाऊँगी' वह बोली। मैंने कहा—'जाओ।' बच्ची फुर्तीसे उठकर चल पड़ी। मैंने दो लड़कोंको पीछेसे देखनेको भेजा कि 'वह कहाँ जाती है?' बच्ची राहपर कुछ दूर जा, फिर लौट आयी। मैंने उसके आते ही पूछा—'बच्ची, कहाँ थी?' 'घरपर सोयी तो थी!'—उसने कहा! अब वह प्रकृतिस्थ थी। धीरे-धीरे ये बातें सबोंको भूल गयीं।

× × × ×

दो महीने बाद ज्येष्ठका पुरुषोत्तममास आया। महीनेभरके लिये शामको भागवतकी कथाका आयोजन किया। दो-तीन ही दिन कथारम्भके हुए थे कि प्रार्थनाके बाद बच्चीको एकाएक मूर्च्छा आ गयी। होश आनेपर पूछनेसे पता चला कि वही 'प्रेतात्मा' वादेके मुताबिक भागवतकी कथा सुनने आयी है। महीनेभर कथा चलेगी, यह जानकर नियमितरूपसे वह बच्चीके माध्यमसे (मूर्च्छा लगाकर) आने भी लगी। दो ही दिनों बाद यह आश्चर्यजनक खबर घर-घरमें फैल गयी। प्रार्थना समाप्त हुई कि बच्ची बेहोश! फिर क्षणभरमें होश

दुरुस्त! और बच्ची शान्त हो कथा सुननेके लिये बैठ जाती। यह तमाशा देखनेके लिये सायंकाल मेरे दरवाजेपर भीड़ लग जाती थी, जो मुझे अखरने लगी। कथा-समाप्तिके बाद दिनोंदिन कुछ समयतक मेरी उसके साथ बातें हुआ करतीं; जिसमें उसका नाम-पता, उसे किस प्रकार यह योनि मिली, रहन-सहन, उसके संगी-साथी, कथा-श्रवणकी लगन आदि बातोंकी जानकारी मिली। मैंने तो तब दाँतों अँगुली काटी, जब उसके द्वारा यह मालूम हुआ कि मेरा सद्यःप्रसूत शिशु और उसकी माँ, जो सात वर्ष पहले ही एक साथ चल बसे थे तथा मेरा ज्येष्ठ पुत्र जो बीस वर्षकी कच्ची उम्रमें ही अपनी नवविवाहिता पत्नीको छोड़ गत वर्ष आश्विनमें अकस्मात् सर्पदंशसे चल बसा था—सब-के-सब साथ-साथ रहते थे। धीरे-धीरे वे सब भी कथामें सम्मिलित होने लगे। विशेषता यह थी कि उन लोगोंकी सम्मतिसे ही कथाके अतिरिक्त समयमें स्मरणमात्रसे ही उनके आनेपर बच्चीके माध्यमसे घण्टों अलग-अलग सबोंसे बातें हुआ करती थीं और जीवित लोगोंकी तरह क्रमशः उनसे मेरी आत्मीयता बढ़ने लगी। लोगोंका हंगामा और बच्चीके शारीरिक कष्टको देख मैंने उन (मृतात्माओं)-से यह अभिलाषा प्रकट की कि कथा सुननेका वे कोई दूसरा उपाय सोचें, जिससे बच्चीको किसी प्रकारका कष्ट न हो और जन-साधारणकी भी भीड़ न लगे। इसपर उनके इच्छानुसार अलग एक आसनका प्रबन्ध रोज किया जाने लगा, जहाँ वे अब बच्चीको बिना मूर्च्छित किये ही आकर कथा सुनने लगीं। हाँ, बच्ची उन्हें साक्षात् देखा करती और बातें भी कर लेती थी।

इस प्रकार लगभग डेढ़ माहतक कथा चलती रही और उन प्रेतात्माओंका नियमितरूपसे कथा-श्रवण भी चलता रहा। कभी-कभी बच्चीके माध्यमसे वे बहुत रोने लगतीं और प्रेतयोनिसे अपने उद्धारके लिये प्रार्थना करतीं। मेरे आश्वासन देनेपर चुप हो जातीं। इस प्रसंगमें काशीके एक सुप्रसिद्ध महात्मासे पत्रद्वारा इनके उद्धारका उपाय पूछा तो उत्तर मिला—

देहि पिण्डं गयां गत्वा विशालामथवा पुनः।

तथा—

विन्ध्यक्षेत्रस्य मातृभ्योऽथवा भक्त्या समर्पय।
जीवितानां व्यसूनां वा विश्वनाथः परा गतिः॥

अन्ततोगत्वा मैंने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि नवरात्रके अवसरपर इन्हें ले जाकर काशी विश्वनाथकी शरणमें सौंप दूँगा। पूछनेपर उनकी सहर्ष स्वीकृति भी मिल गयी। संयोगवश मुझे जरूरी कार्यवश पटनाकी ओर जाना पड़ा, वहाँ चार-पाँच दिन ठहरा। गंगा-स्नान नित्य करता था। मैंने सोचा, शास्त्रोंमें श्राद्ध-तर्पणादिके करनेसे प्रेत-पितरोंकी तृप्ति होनेकी बात लिखी है। इन प्रेतात्माओंके कथानानुसार इन्हें खाने-पीने आदि बातोंमें कष्ट उठाने पड़ते हैं, अतः क्यों न इनके नामसे दो-चार जलांजलि दे दूँ? अतः ३-४ दिनोंतक नित्य उनके नामसे मैंने गंगामें तर्पण किया। बादमें घर लौटनेपर उन लोगोंसे अलग-अलग जिज्ञासा करनेपर पता चला कि इन चार दिनोंमें उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, बल्कि किसी अज्ञात शक्तिके द्वारा एक सुवर्णकी थालीमें नित्य भोजनके लिये मेवे-मिष्ठान्न उन्हें मिलते थे और खा-पी लेनेके बाद थाली जहाँ-की-तहाँ चली जाती थी। इस तरह प्रेतात्माओंसे प्रत्यक्ष सुन और अनुभवकर पारलौकिक विषयोंके सम्बन्धमें शास्त्रीय वचनोंकी सत्यता अक्षरशः प्रमाणित हुई और उनके प्रति मेरी आस्था और भी अधिकाधिक दृढ़ हो गयी।

एक दिन बातचीतके सिलसिलेमें उनमेंसे एकने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'भाईजी! आज देवदूतने कहा है कि 'तुमलोगोंकी यहाँ रहनेकी अवधि पूरी हो रही है। अब दो-चार दिन और कथा-पुराण सुन लो, फिर यहाँसे चल देना है। कुछ एकको तो भादोंके अन्ततक जन्म ले लेना है और कुछ दो वर्ष बाद इस योनिसे मुक्त होंगे; किंतु यहाँ किसीको रहना न होगा।' यह सुनकर शीघ्र हमने योजना बना उन्हें 'श्रीमद्भागवत-सप्ताह' सुनाना आरम्भ किया। इस अवसरपर कितनी ही नयी बातें देखनेको मिलीं। जैसे अबतक कथामें न सम्मिलित होनेवाले मेरे विंशतिवर्षीय दिवंगत पुत्रका आना तथा मुझसे एवं पिताजीसे मिलकर बच्चीके माध्यमसे बातें करना, प्राण-त्यागका कारण बताना, जीवनकालकी

अन्य आवश्यक बातें, अन्य व्यक्तियोंद्वारा जाँचमें पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर देकर उनके सन्देहको दूरकर उन्हें आश्चर्यमें डाल देना। किसी अन्य प्रेतात्माद्वारा कथाभूमिको मिनटोंमें लीपपोत देना एवं अपनी एक खास विचित्र भाषाद्वारा बातें करना तथा बिना बुलाये ही घरकी औरतोंसे बातें करना आदि। सबसे बढ़कर मार्केकी बात यह हुई कि इस बीच मेरा सद्य:प्रसूत मृत शिशु, जिसका सातवाँ वर्ष था, अब बच्चीके माध्यमसे आने लगा और विभिन्न प्रकारकी अद्भुत बाललीलाएँ करता हुआ प्राय: सदा ही घरमें रहने लगा। प्राय: डेढ़ महीने यह क्रम चला। अब बच्चीका अपना व्यवहार खाने-पीने, रहने-सोने, नहाने-पहनने आदिका ढंग ही बदल गया। बिलकुल मासूम बच्चेकी तरह उसका व्यवहार सबोंके साथ होता। मैं भी उसे 'बच्चा बाबू' कहकर पुकारता, लाड़-प्यार करता, गोद लेता, जो मेरे लिये एक नवीनता थी। मुझमें विचित्र ममत्व आ गया। भागवती कथा ब्रह्माके मोहभंग-प्रसंगमें कृष्णमय अपने बच्चोंके प्रति गोप-गोपियोंकी उत्तरोत्तर बढ़ती प्रीति एवं गुरु सान्दीपनि तथा माता देवकीकी मृत पुत्रोंको पाकर बढ़ते हुए प्रेमकी कथा चरितार्थ होनेकी याद हो आयी।

'बच्चा बाबू' से बहुत-सी अद्भुत बातें मालूम हुईं। १०-२० वर्ष पूर्व मृत कितने ही लोगोंकी प्रेत-योनिमें अबतक रहनेकी बात एवं उनके जीवन-कालके रहन-सहन, स्वभाव, आचरणका हूबहू प्रतिरूप बताना। भागवत-महाभारतकी कितनी ही रहस्यमयी कथाएँ सुनाना। श्रीकृष्णके बाँसुरीवादनकी भाव-भंगिमा तोतली बोलीमें गाते हुए प्रस्तुत करना और बाँसुरीकी ताल-मात्राके साथ गाना संगीत मास्टरकी तरह होता था, जिससे मेरी बच्ची तो सर्वथा अनभिज्ञ ही थी। इसके अतिरिक्त इस संक्रमण-कालमें बच्चीकी सारी चेष्टाएँ लड़के-सी होतीं। दौड़ना, खेलना, कूदना, उन्हीं-सा पोशाक पहनना और बाहर दूर-दूर किसीके साथ जाना इत्यादि।

बच्चा बाबूकी यह करामात तो श्रावणतक चली। किंतु सप्ताहकथा समाप्त होनेपर उन प्रेतात्माओंके आग्रहसे मुझे परिवारके साथ जगज्जननी जानकीके दर्शनार्थ एक दिन सीतामढ़ी जाना पड़ा। वे भी गयीं और वहाँ भी क्रमश: उनका परिचय पाकर तीर्थविधिसे दर्शनादिकर शामको घर वापस आया। उसी दिन उन आत्माओंको यहाँसे कुछ दिनोंके लिये उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जाना था। रातके नौ बजते ही वे बारी-बारीसे मेरे पास बच्चीके माध्यमसे आ-आकर पैर छू प्रणामकर चलने लगीं। मैंने पूछा—'अभी इतना पहले ही क्यों जा रही हैं?' उन्होंने कहा—११ बजेतक चले जाना है और देवदूत रथ लेकर खड़े हैं, जल्दी चलनेको कह रहे हैं।' फिर वे घरके अन्य व्यक्तियोंसे मिलकर चले गये। 'बच्चा बाबू' से पता चला कि जाते समय वे आत्माएँ हमसे बिछुड़कर बहुत रो रही थीं। इधर मेरा भी हृदय करुणासे भर आया। आँखसे आँसू गिर पड़े। इस अवसरपर मेरा 'बच्चा बाबू' स्व० ज्येष्ठ पुत्र और उसके साथी अपनी प्रेतयोनिकी पत्नीके साथ नहीं गये। कारण, एक तो ज्येष्ठ पुत्र बीमार था, दूसरे उसकी पत्नीके प्रसव भी हुआ था, जिसमें जन्मोत्सव मनाने मेरी पत्नी भी आयी थी। 'बच्चा बाबू' से तो प्रतिदिनकी बातें मालूम होती ही थीं, पत्नीसे भी वस्तुस्थितिका यथावत् परिचय मिला। अपने स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्रकी पत्नी और प्रसवकी बात सुन आश्चर्यान्वित होकर अपनी पत्नीसे मालूम हुआ कि दो वर्षोंतक उसे (स्व० पुत्रको) अकेले रहनेमें कष्ट होगा, अत: आग्रहपूर्वक मैंने ही विवाह करवा दिया है। फिर प्रेतयोनिमें सद्य: गर्भ रहता है और एक मासके अन्दर ही प्रसव भी। प्रेतशरीरकी आकृतिके विषयमें पूछनेपर पता चला कि पृष्ठभाग खाली और मुँहका छिद्र सूईके छिद्र-इतना होता। ईश्वरीय नियमसे बद्ध होनेके कारण चारों ओर अन्न-जलकी प्रचुरता होनेपर भी इच्छानुसार नहीं मिल पाता। गन्दे स्थानोंका जल तथा मारे-मारे फिरनेपर गन्दे स्थानों या दूकानोंमें फैले अन्नोंका रस मिल जाता है, जो पर्याप्त नहीं होता। किंतु जबसे भागवती कथाका इन्हें सुअवसर मिला, तबसे सारी असुविधाएँ दूर होती गयीं। मुझे भी उनकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रसन्नताका अनुभव होता रहा। उन्हीं लोगोंसे यह भी विदित हुआ कि ठीक इहलोककी तरह गाँवके २०-२५ हाथ ऊपर

अन्तरिक्षमें प्रेतलोक भी है। उनके भी गाँव-नगर बसे हैं। उनमें भी नौकर-चाकर, वैद्य-डॉक्टर, मूर्ख-पण्डित, साधु-वैरागी आदि सभी हैं, जैसा कि मनुष्यलोकमें होता है; क्योंकि कारणविशेषसे ही तो प्रेतयोनिमें जाते हैं और यह भी अनुभव किया कि अकाल-मृत्युसे या सर्पदंश, अग्निदाह, वृक्षपातादिसे मरनेपर ही लोग प्रेत होते हैं—ऐसी भी बात नहीं। बल्कि समयपर बिना किसी विघ्न-बाधाके मरने या विधिवत् अन्त्येष्टि क्रिया करनेपर भी लोग प्रेतयोनिमें निश्चित अवधितक वास करते हैं। अपने-अपने कर्मानुसार वहाँ भी सुख-दु:खसे जीवन जीते हैं। जीवनकालमें जो धर्मात्मा, आचारनिष्ठ, विद्वान् होते हैं, प्रेतयोनिमें उनकी वैसी ही स्थिति होती है और भगवान्की ओरसे सुख-भोगकी, घर-महल, खान-पान आदिकी सारी सुव्यवस्था यहाँकी अपेक्षा अधिक कर दी जाती है। जो यहाँ कर्महीन, पापात्मा, दुराचारी रहते हैं, वे वहाँ भी भूखे-प्यासे मारे-मारे फिरते हैं। गन्दे-सूने खण्डहरों, पेड़की डालियोंपर निवास करते हैं। पशुयोनिके प्रेतोंकी स्थिति धरतीके नीचे या ऊपर ही हड्डीके रूपमें रहती है, जबतक उन्हें रहना है; क्योंकि उनका तो दाह-संस्कार होता नहीं। प्रेतात्माओंने अपनी-अपनी स्थिति एवं घर-द्वार आदिके विषयमें भी पूरा विवरण दिया, जो यहाँ विस्तार-भयसे नहीं दिया जा सकता।

श्रावण (१९६१)-में मैं बीमार पड़ा। महीनों रोग-शय्यापर पड़ा रहा। इस दरमियान प्रेतात्माएँ बराबर आकर मेरी सेवा अपने निश्चित माध्यमसे कर जाया करतीं। भाद्र कृष्ण अष्टमीसे शुक्ल चतुर्थीके भीतर मेरी दिवंगता पत्नीका मुजफ्फरपुरके 'कोरलहिया' ग्राममें कन्याके रूपमें तथा मेरी एक ग्रामीण बहनका सीतामढ़ीके पास भवदेवपुरमें ब्राह्मणकुल तथा उसकी माताका शूद्रकुलमें कहीं जन्म हो गया। ऐसी सूचना उन्हीं लोगोंसे मिली। जाँच करनेपर कोरलहियाकी बात सत्य निकली। भवदेवपुरकी जाँच न कर सका।

श्रीमद्भागवतकथाकी महिमा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। इसीके कारण प्रेतात्माओंसे परिचय मिला, उनका उद्धार हुआ तथा कितनी ही अद्भुत बातोंकी जानकारी हुई। मुझे तो उस अवसरपर बराबर गोकर्ण और धुन्धकारीकी स्मृति आती रहती थी। आश्चर्य यह होता है कि वायवीय शरीर होनेके नाते धुन्धकारी बाहर न बैठ सकनेके कारण बाँसके छिद्रमें बैठता था, पर यहाँ ये लोग बाहर ही बैठा करते थे। इतना जरूर था कि देवयोनि होनेके कारण जमीनसे इनका स्पर्श न होता था।

नियमितरूपसे कथा सुननेवाले प्रेतात्माओंके नाम ये हैं—मेरी पत्नी (रामकुमारी), मेरे पुत्रद्वय (विनयकुमार, विजयकुमार), रामइकबाल (विनयका साथी जिन दोनोंका एक-डेढ़ माहके अन्दरसे अभिचार-प्रयोगात्मक सर्पदंशसे मृत्यु हुई), सिकली (रामइकबालकी बहन) और सिकलीकी माँ।

इन लोगोंके द्वारा जिन प्रेतात्माओंके परिचय मिले, उनके नाम ये हैं—मेरी माताजी (श्रीराजेश्वरी देवी मृत्यु १९४५ ई०); पूज्य चाचाजी पं० श्रीसरयूप्रसाद शर्मा (मृ० १९४६), बा० जोधीसिंह (मृ० १९५२), जय झा (मृ० १९४८), जयमन्त्र झा 'धुक्कू' (मृ० १९४२), कैलाशनाथ शुक्ल चहोत्तर (रायबरेली) निवासी (मृ० १९४५), मोहनदादा बैगना निवासी, सुभद्रा (विनयकी सहचरी) और जानकी (रामइकबालकी सहचरी)।

पूर्वोक्त प्रेतात्माओंके साथ ही इन लोगोंकी प्रेतयोनिकी अवधि पूरी हो गयी, सब-के-सब यहाँसे चले गये। उल्लिखित बातोंके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिनका यहाँ समावेश ठीक नहीं जँचता। वैज्ञानिक इसका शोध करें। मुझे तो सबका सार इतना ही प्रतीत होता है कि शास्त्रीय वचन कितने अटल सत्य हैं, भगवत्कथा कितनी महिमामयी शक्तिशालिनी है, जिसके पानेको देवयोनिका प्राणी भी लालायित रहता है। अत: हम मानवदेहधारियोंको कल्याणार्थ अप्रमत्त हो शास्त्रीय सदाचारोंका पालन करते हुए निरन्तर भगवत्कथामृतका पान करना चाहिये।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

(कठोपनिषद्)

आपके समस्त कार्य भगवान् कर देंगे

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

बालक एवं माँ—दो माहका बालक है। उसके समस्त कार्य उसकी माँ करती है, जैसे—उसको स्नान करवाना, कपड़े पहनाना, सुलाना, दूध पिलाना, गन्दगी कर देनेपर सफाई करना, बीमार हो जानेपर दवा देना, उसकी पूरी देखरेख एवं सुरक्षा करना आदि। माँकी शक्ति एवं बुद्धि सीमित है, इसलिये माँसे भूल हो सकती है।

भगवान्‌का आश्वासन—भगवान्‌की शक्ति एवं भगवान्‌की बुद्धि असीम है, अनन्त है, अपार है। श्रीरामचरितमानस (३।४३।५)-में भगवान् श्रीराम यह आश्वासन देते हैं कि मैं माँकी भाँति ही साधककी रखवाली करता हूँ। उनकी वाणी है—

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥

इसका अर्थ है—मैं सदा उसकी वैसे ही रखवाली करता हूँ, जैसे माता बालककी रक्षा करती है।

साधना—भगवान् आपकी रखवाली तभी करेंगे— जब आप एक विशेष प्रकारकी साधना करेंगे। उस साधनाका नाम है—केवल भगवान्‌का भरोसा करना या भगवान्‌पर निर्भर हो जाना या भगवान्‌का छोटा बेटा बन जाना। श्रीरामचरितमानस (३।४३।४—९)-में भगवान् श्रीरामने अपने श्रीमुखसे इस साधनाको बताया है—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥

अर्थात् श्रीनारदजीने भगवान्‌से पूछा—जब आपकी मायाने मुझे मोहित कर दिया, तब मैं विवाह करना चाहता था। आपने मुझे विवाह क्यों नहीं करने दिया? तब भगवान्‌ने उत्तर दिया—'हे मुनि! सुनो, मैं तुम्हें हर्षके साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं। मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ, जैसे माता बालककी रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँपको पकड़ने जाता है तो वहाँ माँ उसे [अपने हाथोंसे] अलग करके बचा लेती है। सयाना (बड़ा) हो जानेपर उस पुत्रपर माता प्रेम तो करती है, परंतु पिछली बात नहीं रहती (अर्थात् मातृपरायण शिशुकी तरह उसको बचानेकी चिन्ता नहीं करती; क्योंकि वह मातापर निर्भर न होकर अपनी रक्षा आप करने लगता है।) ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्रके समान है और [तुम्हारे-जैसा] अपने बलका मान न करनेवाला सेवक मेरे शिशु पुत्रके समान है। मेरे सेवकको केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानीको) अपना बल होता है, पर काम-क्रोधरूपी शत्रु तो दोनोंके लिये हैं। [भक्तके शत्रुओंको मारनेकी जिम्मेवारी मुझपर रहती है; क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है; परंतु अपने बलको माननेवाले ज्ञानीके शत्रुओंका नाश करनेकी जिम्मेवारी मुझपर नहीं है।]'

विश्लेषण—इस साधनाका विशद विवेचन इस प्रकार है—

(१) दो साधक—साधक दो प्रकारके होते हैं— भगवान्‌का बड़ा पुत्र और भगवान्‌का छोटा पुत्र। छोटे पुत्रका नाम है—सेवक और बड़े पुत्रका नाम है—ज्ञानी। सेवकके समस्त कार्य भगवान् करते हैं। ज्ञानीको अपने समस्त कार्य स्वयंको करने पड़ते हैं।

(२) कार्य—कार्य दो प्रकारके हैं—सांसारिक कार्य और पारमार्थिक कार्य। अपने शरीर, अपने घर, अपने परिवार, नौकरी, व्यवसाय, समाज आदिके कार्योंको सांसारिक कार्य कहते हैं। दुःखनिवृत्ति, परमशान्ति, जीवनमुक्ति, भगवद्भक्ति, भगवान्‌के दर्शन, भगवान्‌की प्राप्तिसे सम्बन्धित कार्योंको पारमार्थिक कार्य कहते हैं।

(३) स्वाधीनता—भगवान्‌ने आपको ज्ञानी एवं सेवक बननेकी पूर्ण स्वाधीनता दी है। आप चाहें तो सेवक बन जायँ, आप चाहें तो ज्ञानी बन जायँ।

(४) कैसे बनें—ज्ञानी एवं सेवक बननेमें न समय लगता है, न श्रम। इसमें न अभ्यास है, न प्रयास। इसमें शरीर और इन्द्रियोंकी सहायतासे कुछ भी नहीं करना पड़ता है। आप अभी-अभी एक पलमें ज्ञानी अथवा सेवक बन सकते हैं। कैसे? इसका उत्तर है—केवल सोचनेमात्रसे। यदि आप मनमें सोचते हैं कि मेरे पास जो भी बल है— शरीरका बल, इन्द्रियोंका बल, मन-बुद्धि-विवेकका बल,

योग्यता और पदका बल, धनका बल आदि, वह मेरा है और मैं इस बलसे अपने सांसारिक एवं पारमार्थिक कार्य करता हूँ तो आप 'ज्ञानी' बन गये। यदि आप सोचते हैं—मेरे पास जो भी बल है, वह मेरे प्रभुका बल है; मेरे सभी सांसारिक एवं पारमार्थिक कार्य प्रभु करते हैं तो आप 'सेवक' बन गये।

सूक्ष्म एवं मार्मिक बात—सेवक सोचता है—मेरा किसी भी प्रकारका कोई भी बल नहीं है, किसी अन्य व्यक्ति एवं प्राणीका भी कोई बल नहीं है, सब बल मेरे प्रभुका है; मैं कुछ भी नहीं करता हूँ, अन्य व्यक्ति एवं प्राणी भी कुछ नहीं करते हैं, सबको सब कुछ भगवान् करवाते हैं या भगवान्की माया करवाती है। वह न तो अपनेको किसी कर्मका 'कर्ता' मानता है, न किसी अन्य व्यक्ति एवं प्राणीको। वह तो एकमात्र भगवान् या उनकी मायाको ही 'कर्ता' मानता है। वह सब कुछ करता हुआ भी मनमें यही सोचता है—मैं कुछ नहीं करता हूँ, मैं 'अकर्ता' हूँ। इसलिये वह कर्मबन्धनमें नहीं फँसता है, उसको शुभ-अशुभ कर्मोंका फल नहीं मिलता है। उसका किसीमें भी राग-द्वेष नहीं होता है। ज्ञानी सोचता है—मेरा बल है, मैं ही सब कुछ करता हूँ, मुझे इसका फल मिलेगा; दूसरोंके पास भी बल है, वे ही सब कुछ करते हैं, उनको भी अपने-अपने कर्मोंका फल मिलेगा।

(५) वास्तविकता क्या है—वास्तविकता, सच्चाई भी यही है कि इस संसारका कोई व्यक्ति, प्राणी, शरीरधारी कुछ भी नहीं करता है; उसमें किसी भी प्रकारका कोई बल है ही नहीं; समस्त बल भगवान्का है, भगवान् ही सबको सब कुछ करवाते हैं अथवा उनकी माया करवाती है। सभी व्यक्ति एवं प्राणी केवल कठपुतलियाँ हैं। श्रीरामचरितमानसमें इस सच्चाईका स्पष्ट वर्णन आया है—

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥

(१।१२४क)

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

(४।११।७)

नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

(४।७।२४)

अर्थात् तब महादेवजीने हँसकर कहा—न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्रीरघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है।

शिवजी कहते हैं—हे उमा! स्वामी श्रीरामजी सबको कठपुतलीकी तरह नचाते हैं।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे पक्षियोंके राजा गरुड़! नट (मदारी)-के बन्दरकी तरह श्रीरामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्की वाणी है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

इसका अर्थ है—वास्तवमें सम्पूर्ण कर्म सब प्रकारसे प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं तो भी जिसका अन्तःकरण अहंकारसे मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी 'मैं कर्ता हूँ' ऐसे मानता है।

भगवान्की मायाके सम्बन्धमें श्रीरामचरितमानसमें आया है—

लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥

(१।५१)

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥

(१।५६।५)

इसका अर्थ इस प्रकार है—यद्यपि शिवजीने बहुत बार समझाया, फिर भी सतीजीके हृदयमें उनका उपदेश नहीं बैठा, तब महादेवजी मनमें भगवान्की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले।

फिर श्रीरामचन्द्रजीकी मायाको सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सतीके मुँहसे भी झूठ कहला दिया।

विवेकके प्रकाशमें विचार करनेपर आपको स्पष्ट अनुभव होगा—'शरीर' अलग है, 'मैं' अलग हूँ। 'मैं' शरीर नहीं हूँ। सब कुछ 'शरीर' करता है, 'मैं' कुछ भी नहीं करता हूँ। शरीरको 'मैं' मान लेनेके कारण ऐसा मिथ्या आभास होता है—'मैं करता हूँ।' यह भूल है। यदि आप इस भूलको मिटा लें तो आपको स्वतः अनुभव होगा—'मैं भगवान्का अंश हूँ। भगवान्के साथ ही मेरा नित्य सम्बन्ध है।'

सच्चाईको स्वीकार करनेमात्रसे आपका कर्तापन मिट जायगा, आप सेवक बन जायेंगे। आपके समस्त कार्य भगवान् कर देंगे।

'बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा'

(श्रीअमृतलालजी गुप्ता)

शान्ति किसे नहीं चाहिये? सभी तो अशान्त हैं, बेचैन हैं, व्याकुल हैं, दुखियारे हैं। किसीको इस बातका दु:ख है तो किसीको उस बातका दु:ख। आज एक बातका दु:ख है तो कल दूसरी बातका। संसारके सारे लोग दु:ख-संतप्त हैं। इन दु:खोंसे बाहर कैसे आयें? इन दु:खोंसे छुटकारा कैसे पायें? सही अर्थमें सुख-शान्तिका जीवन कैसे जी सकें?

हमारे देशके ऋषियोंने, मुनियोंने इसी बातकी खोज की कि दु:खोंसे छुटकारा कैसे मिले? सही अर्थमें सुख-शान्ति कैसे प्राप्त हो? सब एक ही परिणामपर पहुँचे कि बिना हरिभजनके सुख-शान्ति नहीं मिल सकती। सबने अपने-अपने अनुभवके आधारपर मानवके क्लेश एवं तनावोंको मिटानेके उपाय बताये। भगवान् शिवजीने उमा (पार्वती)-से कहा—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

उत्तरकाण्डमें काकभुशुण्डिजी भी अपना अनुभव बता रहे हैं—

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥

(रा०च०मा० ७। ८९। ५)

अत: क्लेशोंसे मुक्ति एवं सच्ची सुख-शान्ति हरिभजनके अतिरिक्त किसी प्रकार नहीं मिल सकती लेकिन हरिभजन अर्थात् हरिभक्ति तभी सुख-शान्ति प्रदान करती है, जबकि उसे धारण किया जाय। भक्ति तो करें नहीं और उसकी चर्चा करें तो सुख-शान्ति नहीं मिलती। अत: समझें कि भक्ति हमारे व्यवहारमें कैसे उतरे।

भगवान्को चन्दन-पुष्प अर्पण करना, मात्र इतनेमें कोई भक्ति पूर्ण नहीं होती, यह तो भक्तिकी एक प्रक्रियामात्र है। भक्ति तो तब होती है जब सबमें भक्तिभाव जागता है। ईश्वर सबमें है। 'मैं जो कुछ भी करता हूँ, उस सबको ईश्वर देखते हैं' जो ऐसा अनुभव करता है, उसको कभी पाप नहीं लगता। उसका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बनता है। वह अतिशुद्ध व्यवहार है और यही तो भक्ति है। जिसके व्यवहारमें दम्भ है, अभिमान है, कपट है, उसका व्यवहार शुद्ध नहीं। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं, उसे भक्तिमें आनन्द आता नहीं।

मानव भक्ति करता है, परंतु व्यवहार शुद्ध नहीं रखता। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं, वह मन्दिरमें भी भक्ति नहीं कर सकता। जिसका व्यवहार शुद्ध है, वह जहाँ बैठा है, वहीं भक्ति करता है और वहीं उसका मन्दिर है। व्यवहार और भक्तिमें बहुत अन्तर नहीं है। अमुक समय व्यवहारका, अमुक समय भक्तिका—ऐसा विभाजन नहीं है। रास्ता चलते, गाड़ीमें यात्रा करते अथवा दुकानमें बैठकर धन्धा करते, सर्वकालमें और सर्वस्थलमें सतत भक्ति करनी है। भक्त बाजारमें शाक-भाजी लेने जाय, यह भी भक्ति है। उसका ऐसा भाव है कि—'मैं अपने ठाकुरजीके लिये शाक-भाजी लेने जाता हूँ।' प्रत्येक कार्यमें ईश्वरका अनुसन्धान, इसे कहते हैं पुष्टिभक्ति।

प्रभुका स्मरण करते-करते घरका काम करो तो वह भी भक्ति है। 'यह घर ठाकुरजीका है। घरमें कचरा रहेगा तो ठाकुरजी नाराज होंगे।' ऐसा मानकर झाड़ू देना भी भक्ति है। मेरे प्रभु मेरे हृदयमें विराजमान हैं, उन्हें भूख लगी है। ऐसी भावनासे किया हुआ भोजन भी भक्ति है। बहुत-सी माताओंको ऐसा लगता है कि कुटुम्ब बहुत बड़ा है, जिससे सारा दिन रसोईघरमें ही चला जाता है। सेवा-पूजा कुछ हो नहीं पाती, परंतु घरमें सबको भगवद्रूप मानकर की हुई सेवा भी भक्ति है। भक्ति करनेके लिये घर छोड़ने या व्यापार छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। केवल अपने लिये ही कार्य करो, यह पाप है। घरके मनुष्योंके लिये काम करो, यह व्यवहार है और परमात्माके लिये काम करो, यह भक्ति है। कार्य तो एक ही है, परंतु इसके पीछे भावनामें बहुत फर्क है। महत्त्व क्रियाका नहीं, क्रियाके पीछे हेतु क्या है, भावना क्या है—यह महत्त्वपूर्ण है। मन्दिरमें एक मनुष्य बैठा-

बैठा माला फेरे परंतु विचार संसारका करे, दूसरा मनुष्य प्रभुका स्मरण करते-करते बुहारी करे तो उस माला जपनेवालेसे यह बुहारी करनेवाला श्रेष्ठ है।

अपनी दिनचर्याकी सब क्रियाओंको भगवान्‌से जोड़ दें। हम स्नान कर रहे हैं। क्यों स्नान कर रहे हैं? शरीरको स्वच्छ करनेके लिये; क्योंकि हमें भजन करनेके लिये भगवान्‌के पास बैठना है। हमारे पसीनेकी दुर्गन्ध भगवान्‌को न आ जाय। इस भावनासे स्नान करना भी भक्ति हो गया। हमें कोई रोग लग गया, उसका उपचार करा लें क्यों? क्योंकि हम निरोग हो जायँगे तो भगवान्‌का भजन अच्छे-से कर पायेंगे। इस भावनासे रोगका उपचार करना भी भक्ति बन गया। अत: अपने शरीरकी, मनकी सब क्रियाओंको भगवान्‌से जोड़ दें। इस प्रकार हमारी दिनचर्याकी सब क्रियाएँ भक्तिमय हो जायँगी।

व्यवहार करो। व्यवहार करना खोटा नहीं, परंतु जो व्यवहार प्राप्त हुआ है, उसमें विवेककी आवश्यकता है। मनुष्यको सतत भक्तिमें आनन्द नहीं आता। अपने-जैसे साधारण मनुष्यका मन पाँच-छ: घण्टे परमात्माका ध्यान, सेवा-स्मरण करनेके उपरान्त कुछ और-और माँगने लगता है। निरन्तर मिठाई मिले तो मनमें अभाव होने लगता है, वैसे ही मनुष्यको सतत भक्ति करनेका अवसर मिलनेपर वह भक्ति नहीं कर सकता। भगवान्‌मेंसे उसका मन हट जाता है। जैसे शरीरको थकान होती है, वैसे ही मनको थकान होती है। पाँच-छ: घण्टा सेवा करनेके उपरान्त मन थक जाता है। इसलिये दोनों प्रवृत्तियोंको ढूँढ़ता है। भक्तिके लिये प्रवृत्तियोंका निरन्तर त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रवृत्तियोंको सतत भक्ति बनाओ। भक्ति दो-तीन घण्टेकी नहीं, चौबीसों घण्टोंकी करो। अपनी प्रत्येक प्रवृत्तिको भक्तिमय बनाओ, भक्ति बनाओ।

बड़े-बड़े संत भी प्रारम्भमें धन्धा करते थे। संत यह धन्धा करते-करते ही भक्ति करते थे और प्रभुको प्राप्त करते थे।

नामदेव दर्जी थे, गोरा कुम्हार घड़ा बनाते थे, कबीरजी बुनकर थे, सेना भगत हजामतका काम करते थे।

ये सभी संत धन्धा करते थे, परंतु सबमें प्रभुको देखते। ग्राहकमें भी परमात्माका अनुभव करते। प्रत्येक महापुरुषको अपने धन्धेमेंसे ज्ञान मिला। प्राचीनकालमें महान् ज्ञानी ब्राह्मण भी वैश्यके घर सत्संगके लिये जाते। जाजलि ऋषिकी कथा है। एक दिन उनको आकाशवाणीसे आज्ञा हुई कि सत्संग करना हो तो जनकपुरमें तुलाधार वैश्यके यहाँ जाओ। जाजलि ऋषि तुलाधारके यहाँ गये।

तुलाधार उस समय दुकानमें काम कर रहे थे। जाजलिको देखकर उन्होंने पूछा—क्या आकाशवाणी सुनकर आये हो? जाजलिको महान् आश्चर्य हुआ कि वैश्य और इतना महान्! तुलाधरसे पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन है?

तुलाधरने कहा—मेरा धन्धा ही मेरा गुरु है। मैं अपने तराजूकी डण्डी ठीक रखता हूँ। किसीको कम नहीं तोलता, बहुत नफा नहीं लेता। मेरी दुकानपर आनेवाला ग्राहक प्रभुका अंश है, ऐसा मानकर व्यवहार करता हूँ। तराजूकी डण्डीकी तरह अपनी बुद्धिको ठीक रखता हूँ, टेढ़ी होने नहीं देता। अपने माता-पिताको परमात्माका स्वरूप मानकर उनकी सेवा करता हूँ तथा धन्धा करता-करता मनमें मालिकका सतत स्मरण रखता हूँ।

धन्धा करनेमें ईश्वरको भूलो नहीं तो तुम्हारा धन्धा ही भक्ति बन जायगा। ठाकुरजीका दर्शन करनेमें यदि दुकान दीखे तो दुकानका काम-काज करनेमें भगवान् क्यों न दीखें? कोई-कोई वैष्णव दुकानमें श्रीद्वारिका-नाथजीका चित्र पधराते हैं, यह ठीक है, परंतु द्वारिकानाथ सदा हाजिर हैं, ऐसा समझकर व्यवहार करें, यह बहुत जरूरी है। जबतक देहका भान है, तबतक व्यवहार तो करना ही पड़ेगा। व्यवहार करो परंतु व्यवहार करते-करते परमात्मा सबमें विराजते हैं, यह भूलो मत। व्यवहारमें अपने धर्मको मत छोड़ो। जीवनमें धर्म ही मुख्य है अन्य चीजें गौण हैं।

यदि हमारी दिनचर्याके व्यवहारमें भगवान्‌की भक्तिका रंग एक बार भी चढ़ गया तो हमारे जीवनके क्लेश एवं तनाव सब दूर हो जायँगे—ऐसा दृढ़ विश्वास है।

कैसे लायें जीवनमें खुशियाँ ?

(डॉ० श्रीशैलजाजी आहूजा)

आमतौरपर लोग नहीं जानते कि खुशी क्या है? ढेर सारे पैसे, ऐशो-आराम होते हुए भी आज लोग खुश नहीं हैं, जबकि जिनके पास ज्यादा कुछ नहीं होता, फिर भी वे खुश रहते हैं। सच्चाई तो यह है कि खुशी कहीं नहीं, बल्कि हमारे अन्दर हर समय मौजूद रहती है, जिसे हम देख नहीं सकते, पर महसूस कर सकते हैं।

वैज्ञानिकोंका दावा है कि उन्होंने खुशीके उस रहस्यको सुलझा लिया है, जो हमेशासे मनुष्यको परेशान करता आ रहा था। यह रहस्य जटिल नहीं, बल्कि बहुत सरल है। लोग यह समझते हैं कि खुशीका मतलब है— सच्चा प्यार, ढेर सारी दौलत या फिर बढ़िया-सी नौकरी, लेकिन वैज्ञानिकोंके अनुसार खुशीका एक फार्मूला (सूत्र) है—पीईएच।

इसमें 'पी' का मतलब-पर्सनल कैरेक्टरस्टिक अर्थात् इंसानके व्यक्तिगत लक्षण, जिनमें शामिल है— इंसानका जीवनके प्रति रवैया और विभिन्न परिस्थितियोंमें स्वयंको सन्तुलित रखनेकी क्षमता। 'ई' का मतलब है— एग्जिस्टेंस यानी अस्तित्व, जो हमारी सेहत, आर्थिक स्थिति और हमारे मित्रों-सम्बन्धियोंसे जुड़ा हुआ है। 'एच' का मतलब है—हायर आर्डर नीड्स अर्थात् आत्मसम्मान, दूसरोंके लिये स्वयंकी आवश्यकताओंका उत्सर्ग करनेकी आकांक्षा इत्यादि। इस तरह तीन अक्षरोंसे मिलकर बना यह खुशीका फार्मूला है, जिसे मनोवैज्ञानिकोंने शोधके उपरान्त तैयार किया है।

एक मनोवैज्ञानिक पीट कोहेनके अनुसार, 'ज्यादातर लोग यह नहीं जानते कि खुशी क्या है? वे समझते हैं कि खुशी मिलती है बहुत सारे पैसेसे, बड़ेसे घर या बढ़िया मकानसे, लेकिन वास्तवमें सच यह है कि कई लोग यह सब कुछ होते हुए भी खुश नहीं हैं; चेहरेपर चमक नहीं है जबकि बहुत-से लोग इन सबके बिना भी बहुत खुश हैं और जिन्दगीका भरपूर सुख उठाते रहते हैं।'

कोहेनके अनुसार—वे लोग दुखी रहनेमें सबसे आगे हैं जो नकारात्मक चीजोंपर अधिक ध्यान देते हैं जैसे जीवनमें क्या-क्या गलत है या उन्हें क्या-क्या अभीतक नहीं मिल पाया। इसके विपरीत वे लोग कम-से-कममें भी सुखी हैं, जिन्हें जो कुछ भी मिला है, वे उसीसे सन्तुष्ट हैं। मनोवैज्ञानिकोंके अनुसार नकारात्मक तत्त्व हमारे जीवनमें दु:ख, असंतोष एवं अशान्तिका संचार करते हैं जबकि सकारात्मक तत्त्व हमें आन्तरिक खुशी, संतोष एवं शान्ति देते हैं।

खुशी बाजारमें मिलनेवाली कोई वस्तु नहीं है जिसे पैसे देकर खरीदा जा सके। इसका कोई आकार नहीं होता और न ही इसे चुराया जा सकता है। खुशी छोटी या बड़ी नहीं होती और न ही यह बड़ी चीजोंको हासिल करनेसे बनी रहती है। यह तो जिन्दगीकी छोटी-छोटी चीजोंसे मिलती रहती है। बस! हमें उन्हें देखने तथा समझनेका तरीका नहीं आता।

'ए न्यू अर्थ' के लेखक एकहार्टका कहना है कि जिन्हें जीवनकी बड़ी खुशी समझा जाता है, जैसे—नयी कार खरीदना, अच्छी नौकरी हासिल करना, पगार बढ़ना आदि। एक तो ये जीवनमें बहुत कम आती हैं और दूसरा इन्हें महत्त्व देकर हम स्वयंको भुला देते हैं और स्वयंसे दूर हो जाते हैं; जबकि जीवनमें आनेवाली छोटी-छोटी खुशियाँ ही जीवनका आधार होती हैं और जीवनमें रोजाना भारी मात्रामें आती हैं, लेकिन हम अपने नकारात्मक दृष्टिकोणके कारण उन्हें देख नहीं पाते और न ही पर्याप्त महत्त्व देते हैं।

सच तो यह है कि जीवनमें बड़ी उपलब्धि एवं बड़ी खुशी पानेके लिये हम इन ढेर सारी छोटी-छोटी खुशियोंकी निरर्थक बलि देते रहते हैं और इस तरह न तो हम वर्तमानमें खुश रह पाते हैं और न ही भविष्यको सुखद कर पाते हैं। इसका कारण यह भी है कि निरन्तरके नकारात्मक चिन्तनसे और इस सोचसे कि जो हमें मिला है, वह कम है। हमारा स्वभाव ही कुछ इस तरहका बन जाता है कि हम जाने-अनजाने मिलनेवाली इन खुशियोंकी परवाह ही नहीं करते और सदा दुखी रहनेको अपना स्वभाव बना लेते हैं।

खुशी तो देनेकी चीज है, जिसे जितना बाँटो, वह

उतनी ही बढ़ती है। यह जितना चाहो, उतनी मिल सकती है। बस, हमें केवल इसे देखने एवं समझनेका नजरिया बदलनेकी आवश्यकता है। प्रश्न यह उठता है कि इस दृष्टिकोणको कैसे बदला जाय? कुछ ऐसे सरल एवं आसान उपाय हैं, जिन्हें अपनाकर हम न केवल अपने नकारात्मक दृष्टिकोणको बदल सकते हैं बल्कि स्वयंको सदा खुश भी रख सकते हैं।

ऐसा ही एक उपाय है कि हम सदा स्वयंसे प्रेम करें। जब हम स्वयंको चाहते हैं, पसन्द करते हैं, तब ही दूसरोंसे प्रेम कर पानेमें और उन्हें आत्मीयता दे पानेमें समर्थ हो पाते हैं। जो स्वयंसे असन्तुष्ट होते हैं और सदा अपने व्यक्तित्वमें कमियाँ देखते रहते हैं, उनके आत्मविश्वासमें कमी बनी रहती है और वे दूसरोंका भी प्रोत्साहन नहीं कर पाते। उनकी अपनी असुरक्षा उन्हें दूसरोंको भी संरक्षण और सुरक्षा देनेमें नाकामयाब बना देती है।

इस कमीको दूर करनेका एक अच्छा उपाय यह है कि हम नियमित अपनी डायरीमें कम-से-कम एक सत्य सकारात्मक घटना अपने विषयमें लिखें। ऐसा करनेके लिये हमें अपनी खामियोंको न देखकर अपनी खूबियोंपर ध्यान केन्द्रित करना होगा तथा सत्य लिखनेकी आदत हमें ऐसा कर्म करनेके लिये प्रेरित भी करेगी। धीरे-धीरे सकारात्मक घटनाक्रमोंसे हमारी डायरी भी भरेगी और हमारे जीवनमें भी सद्‌गुणोंका समावेश होता चला जायगा।

परमात्माने हर मनुष्यको कोई-न-कोई खास गुण दिया है जिसे हम पहचानें, खोजें और निखारनेका प्रयास करें। हर व्यक्ति अपने आपमें विलक्षण एवं खास है और परमात्माने उसके जैसा दुनियामें किसी दूसरेको नहीं बनाया है। इसलिये यदि हम यही दृष्टिकोण रखकर अपने व्यक्तित्वकी विशेषताओंपर ध्यान देते हुए उनको विकसित करनेका प्रयास करें तो शनैः-शनैः व्यक्तित्व ऐसी अनगिनत विशेषताओंसे परिपूर्ण हो जाता है और हम अपनी एक विशेष पहचान बना पानेमें भी सफल हो जाते हैं। अपनी विशेषताओंपर ध्यान देनेका अर्थ दूसरेके व्यक्तित्वमें कमियाँ निकालना या दूसरोंसे अपनी तुलना करना नहीं हैं। इसका अर्थ मात्र अपने जीवनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना और उसे उसी अनुरूप विकसित करना है।

सकारात्मक दृष्टिकोण रखनेका उपाय यह भी है कि जिन कार्योंको अतीतमें नहीं किया जा सका, उन्हें हम वर्तमानमें करनेका प्रयास करें और इस तरह प्राप्त उपलब्धियोंसे हमारे आत्मविश्वासमें जो बढ़ोत्तरी होगी, वह हमें भविष्यमें बड़े कार्योंको नूतन संकल्पके साथ करनेका साहस भी प्रदान करेगी। बढ़ा हुआ आत्मविश्वास न केवल सन्तुष्टिका आधार बनेगा, बल्कि स्वतः ही हमें वह खुशी प्रदान करेगा, जिसे प्राप्त करनेका स्वप्न हम सदा देखते हैं।

मनमें आत्मविश्वास पैदा करने एवं अपनी खुशीको बढ़ानेका एक अच्छा उपाय यह भी है कि हम विगत अतीतमें अपने द्वारा प्राप्त की गयी सफलताओंको याद करें। अतीतमें मिली कामयाबियों एवं जटिल संघर्षोंको याद करनेसे मनमें यह आत्मविश्वास स्वतः पैदा होता है कि हम भविष्यमें भी इस तरहके अच्छे कार्य कर सकते हैं।

कुछ व्यक्तियोंके मनमें यह हीन भावना होती है कि वे सुन्दर नहीं हैं। यह सच है कि सुन्दर बन जाना व्यक्तिके हाथमें नहीं होता, लेकिन अपने अन्तर्मनको श्रेष्ठ बनाया जा सकना अवश्य सम्भव है और इसके लिये हमें यथासम्भव प्रयास करना चाहिये। नियमित स्वाध्याय, सत्संग, पीड़ितोंकी सेवा, सुनी एवं पढ़ी गयी अच्छी बातोंपर चिन्तन, मनन एवं उन्हें जीवनमें उतारनेके लिये किये गये प्रयत्न ही वे सब माध्यम हैं, जो मनुष्यको सुखी बनाते हैं। महापुरुषोंका कथन है—***'सुख बाँटें और दुःख बँटायें।'***यह जीवनकी खुशियोंको बढ़ानेका मूल मन्त्र है। हमारे सुख बाँटनेमें ही हमारी खुशी छिपी है और यदि हम इसे छिपाकर रखते हैं तो यह कभी विकसित नहीं हो पाती और दूसरोंके दुःखको बँटानेसे एक तो उनका दुःख कम होता है और दूसरा इस परोपकारसे हमें वह आन्तरिक सन्तुष्टि मिलती है, जिसकी सुगन्ध वायुमें फैलती है और सभीको आनन्दित करती है।

अपनी नकारात्मक सोचसे मुक्ति पानेके लिये सकारात्मक सोचको अपनाना जरूरी है और इसे अपनानेके लिये जरूरी है कि हम न केवल दिये गये उपायोंको अपनी सोचमें सम्मिलित करें वरन् उनका निरन्तर प्रयोग भी करें, तभी व्यक्तित्वमें स्थायी परिवर्तन ला पाना सम्भव होगा, जो हमारे सुखको बढ़ानेमें सहायक सिद्ध होगा।

गायोंकी चोरी रोकना आवश्यक

(श्रीमुलखराजजी विरमानी)

यह लेख नहीं, एक चेतावनी है कि गायकी घटती आबादी भयंकर स्थितिमें पहुँच गयी है। अनुमान है कि हर दिन लगभग एक लाख देशी गायें कटती हैं। इस अनर्थको बढ़ावा देनेके लिये बड़े वेगसे हर दिन कसाई नये ट्रक खरीद रहे हैं, जिनमें रातको चोरीसे सड़कों और गलियोंमें घूमती गायोंको बेहोशकर लादा जाता है। यह कसाई लोगोंके धन कमानेका सबसे आसान साधन बन गया है। शायद ही ऐसा कोई छोटा शहर या गाँव हो, जहाँ रातको ये ट्रक चक्कर लगा लगाकर गायको न उठाते हों।

स्वतन्त्रताके समय १२१ करोड़ गाय आज मात्र १० करोड़ रह गयी हैं। समाज अब भी नहीं चेता और जानकी बाजी लगाकर गायकी चोरी तथा कटाईको नहीं रोका तो गाय बचनेवाली नहीं है। हमारी लगभग गाय-सम्बन्धी सभी संस्थाएँ बड़े परिश्रमसे सभाएँ तो बहुत करती हैं और उनमें गायकी रक्षाके निमित्त ईंट-से-ईंट बजा देनेकी धमकियाँ भी देते हैं, कुछ प्रयास भी होते हैं, जिससे चोरी-छिपे कटनेके लिये ले जा रही कुछ गायोंको बचा भी लिया जाता है, परंतु अभीतक यह प्रयास अधूरे ही नहीं, बल्कि समस्याके हलके लिये नगण्य ही हैं। यह चेतावनी माँग करती है कि गायको बचानेके लिये हमें भाषणोंको छोड़ ठोस कदम उठानेकी आवश्यकता है। इस समय देशकी स्थिति यह है कि गलियों और बाजारोंमें रातको घूमती हुई गाय नितान्त असुरक्षित है। वास्तविक स्थिति यह है कि गाय-चोरोंका मनोबल इतना बढ़ गया है कि गायें सुरक्षित स्थान जैसे गोशालाओंसे भी रातको उठायी जा रही हैं। ऐसी घटनाओंमें वृन्दावनके परिक्रमामार्ग-स्थित एक आश्रमकी गोशाला है, जिनके महन्त और बाकी संत गायकी चोरी और सीनाजोरीको असहाय खड़े देखते और चिल्लाते रह गये, परंतु गायोंको बेहोशकर ट्रकमें भरकर ये लुटेरे ले गये। इस हादसेके पश्चात् वृन्दावनकी कुछ गोशालाओंने दो-दो गेट गायकी सुरक्षाके लिये लगवाये हैं, परंतु बहुत सारी गोशालाएँ धनके अभाव और उपेक्षाके कारण ऐसा नहीं कर पायीं। ऐसी असुरक्षाकी स्थितिमें गलियोंमें घूमती हुई या घरोंके सामने बँधी हुई गायोंकी सुरक्षा नहीं हो पाती। गाय पालनेवालोंको चाहिये कि गायको बाहर न बाँधकर घरके आँगनमें पूरी सुरक्षा देकर रखें। यहाँपर रातको गश्त करती पुलिस कम सतर्क होनेके कारण गायोंको ट्रकोंमें लादकर ले जानेवाले चोर अपने काममें सफल रहते हैं।

गायोंकी सुरक्षाके लिये गाँवों और छोटे शहरों जहाँसे गायें उठ रही हैं, युवा लोग सुरक्षा दलके रूपमें रातको दो-दो घण्टेकी अवधिके लिये पहरा दें। ऐसे दलोंको अपनी सुरक्षाके लिये हथियार रखनेका लाइसेंस सरकार दे, तभी सुरक्षा सम्भव हो पायेगी। सुरक्षाके बारेमें अब ढील देनेकी कोई गुंजाइश नहीं; क्योंकि गायोंकी घटती हुई आबादी ऐसे स्थानपर पहुँच गयी है, जो महान् चिन्ताका विषय है।

यह सिद्ध हो चुका है कि देशी गायका दूध अमृतके समान है और इसके सेवनसे कई रोगोंका निदान हो जाता है। शहरमें रहनेवालोंको तो यह दूध नहीं मिलता, परंतु जिस गतिसे गाय कट रही है, उससे आनेवाले वर्षोंमें गाँव भी इससे वंचित हो जायँगे।

गोचारण भूमिका प्रयोग—गायके बचानेका एक साधन यह भी है कि सारी गोचारण भूमि जो लोगोंने हथिया ली है, वह गोशालाओंको वापस की जाय। बीते वर्षोंमें हर एक गाँव और छोटे शहरमें भी गायोंको प्रातः ही जंगलमें चरानेके लिये चरवाहे ले जाते थे। यह प्रथा अब न-के समान रह गयी है; क्योंकि जंगल अब बहुत कम रह गये हैं। इसका एक बड़ा साधारण हल यह है कि सरकार सरकारी जंगलोंको गायोंके चरनेके लिये छोड़ दे। गाय अगर दिनभर चरती है तो स्वस्थ तो रहती ही है और सायं वापस अपने स्थानपर आकर उसको बहुत कम खानेको चारा चाहिये होता है। गाय-सम्बन्धी संस्थाएँ इस बारेमें विचार करें और राज्य सरकारोंको बाध्य करें कि गोचारणकी भूमि और वनोंको केवल इसी कामके लिये छोड़ दें। इससे गायोंका भला तो होगा ही साथ ही जंगलोंको गोबर और गोमूत्रसे सींचती हुई गाय उन जंगलोंको पोषित भी करेगी।

सन्तों और उद्योगपतियोंसे प्रार्थना—अब प्रश्न आता है कि गायको समाजके लिये और कैसे अधिक

उपयोगी बनाया जा सकता है। यह प्रश्न अपने आपमें बहुत अहम है और इसका एकमात्र उत्तर यह है कि जबतक गायके गोबर और गोमूत्रको बहुत बड़ी सम्पत्ति नहीं माना जाता और उसको उपयोगमें नहीं लाया जाता तो ईश्वरकी महान् देन गायके पालनेमें कठिनाइयाँ तो आयेंगी ही। इसके पंचगव्य (दूध, दही, घी, गोबर एवं गोमूत्र)-से हर उस वस्तुका निर्माण हो, जो मनुष्यमात्रके लिये उपयोगी हो। इस कार्यको करनेके लिये छोटे उद्योगपति तो कार्य कर सकते हैं, परंतु आजके स्पर्धाके युगमें बड़े उद्योगपति भी बढ़-चढ़कर ऐसे उद्योग लगायें और पंचगव्यको गोशालाओं और किसानोंसे खरीदें तो वे गाय पालनेमें अधिक रुचि भी लेंगे। बड़े उद्योगपति साधनसम्पन्न तो होते ही हैं, उन्हें लाभदायक उद्योग चलानेकी कला भी आती है। यह तभी सम्भव है जब समाज यह समझे कि गायको बचाना है तो पंचगव्यसे बनी वस्तुओंका अधिक-से-अधिक प्रयोग करें। यह यदि सुचारु रूपसे हो तो निश्चित है कि उद्योगपतियोंको ऐसे उद्योग लगानेमें और उनका विस्तार करनेमें बल मिलेगा। इस कार्यमें हमारे महान् संत जो गायकी सुरक्षाके लिये हर सम्भव उपाय करनेको तत्पर हैं, वह उद्योगपतियोंको प्रेरित करें कि वह ऐसे उद्योग लगायें और पूरी योग्यता और लगनसे इन उद्योगोंको लाभपर चलायें।

भगवान्‌से नाता जोड़नेका महत्त्व

(दिव्यज्योति पूज्या देवकी माताजी)

मनुष्यके जीवनका एक पहलू है—भाव-शक्ति। विचार-शक्तिके अतिरिक्त हम लोगोंको एक विशेष शक्ति प्राप्त है, वह है भाव-शक्ति—प्रेमका भाव, श्रद्धा-भक्ति, विश्वासका तत्त्व। जैसे कार्य करनेकी क्षमता मिली है, जैसे भले-बुरेपर विचार करनेकी शक्ति मिली है, ऐसे ही श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, प्रेम—यह सब भी मिला हुआ है। यह भाव-पक्ष कहलाता है। तो इस भाव-पक्षका अबतक हमने भूल-मिश्रित उपयोग किया। इसलिये हमारे भीतर तरह-तरहकी आसक्तियाँ पैदा हो गयीं। अब हम अपनेको साधक कहते हैं। अब हम अपनेको सत्संगी कहते हैं। अब तो इस बातपर हम तुल गये हैं कि इस शरीरका नाश होगा पीछे और हम अपने वास्तविक स्वरूपसे अभिन्न होंगे पहले। इस बातके लिये हम लोग तैयार हो गये हैं। अबतक खूब खेल-तमाशे देख लिये। खूब सुख-दु:खकी लहरियोंमें डूबना-उतराना सब देख लिया। अब जो इस जीवनका शेष भाग बचा है, वह तो सब प्रकारसे योग, बोध, प्रेमसे अभिन्न होनेके लिये है। शान्ति, स्वाधीनता और सरसतासे मिलनेके लिये है। अब इस निश्चयके अनुसार काम करना है।

इसके लिये अनुभवी सन्तकी सलाह है कि शरीरके नातेसे सब सम्बन्ध मानना छोड़कर अब प्रभुके नातेसे सम्बन्ध मानना आरम्भ करो। यह सारा संसार, सारी सृष्टि चराचर जगत्, हमारे उस प्यारे प्रभुकी ही अभिव्यक्ति है। ये सब उनको प्रिय हैं। ये सब उनके अपने हैं। तो मुझे अब क्या करना है? अपने भाव-तत्त्वको पवित्र करनेके लिये देहका नाता मिटा करके, भगवत्-नाते सभीके प्रति सद्भाव और प्रेम रखना है। यहाँसे आरम्भ करेंगे।

मेरा सम्बन्ध किससे है? तो मेरा सम्बन्ध केवल एकसे है, अनेकसे नहीं है। मैंने कई ईश्वरविश्वासियोंको अपने महाराजजीके पास यह कहते हुए सुना है कि हे महाराज! भगवान्‌को याद करने बैठी तो बहुत-सी बातें याद आने लगती हैं। तो महाराजजी कहते हैं कि देखो भैया! जीवनमें तुमने केवल भगवान्‌का सम्बन्ध नहीं रखा है, दस सम्बन्ध तुम्हारे पहलेसे थे, अब तुमने ग्यारहवाँ सम्बन्ध परमात्माका मान लिया, तो जीवनमें एक बटा ग्यारह परमात्माकी याद आयगी और दस बटा ग्यारह संसारकी याद आयगी। ठीक है न? हम लोगोंको क्या करना चाहिये? अगर प्रेम-तत्त्वको विकसित करना है और उसे उस प्यारे प्रभुके लिये परम पवित्र बनाना है तो आसक्तिका बोझ उसमेंसे निकाल देना पड़ेगा। प्रेम-तत्त्व जो है, वह तो ऐसा अलौकिक तत्त्व है कि आप कितने भी अपराधमें फँस जाइये, कितने भी पतनके गड्ढेमें चले जाइये, उस अविनाशी तत्त्वका नाश नहीं होता। हमारी भूलोंसे वह दूषित हो जाता है। उसके दूषणको मिटा देना—बस, इतना ही अपना पुरुषार्थ है।

'वह' ज्यों-का-त्यों है, कभी मिटा ही नहीं, कभी मिटेगा भी नहीं। अपना सम्बन्ध रखना है—एक-से और सबके प्रति सद्भाव रखना है उस एकके नाते, तो भगवत्-नाते अगर जगत्को अपना मानोगे, तो भीतर राग-द्वेषका विकार पैदा नहीं होगा। ईश्वरवाद यहाँसे आरम्भ होता है।

और हम लोग क्या करते हैं कि भगवान्का एक चित्र सामने रख लिया और विविध प्रकारकी क्रियाओंसे, तरह-तरहके उपायोंसे हम अपनेको उनके प्रति प्रेमभावको प्रकट करनेके द्वारा पवित्र बनाना चाहते हैं। विविध सम्बन्धोंका त्याग नहीं किया और सामने चित्र रख लो, विग्रह रख लो और बहुत सामग्री जुटा लो, बहुत देरतक विधि-विधानसे पूजा करो तो भी एक सम्बन्ध अगर जीवनमें नहीं है तो वह सजीव नहीं होता है। थोड़ी देरके लिये वहाँ बैठकर पूजा करना अच्छा लगता है। थोड़ी-थोड़ी देरके बाद ध्यानमें आता है कि जल्दी-जल्दी खत्म करके चलो, अब दूसरे काम हैं।

जिन सन्तोंने एक प्रभुसे नाता जोड़ा—जैसे मीराजीने कहा—*'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।'* दूसरा कोई मेरा है नहीं, वे जब पूजा करने बैठते हैं और उनके प्रभुका प्रेम उनके हृदयमें भरता है तो पूजा करते-करते वे अपनेको भूल जाते हैं। अपनेको भूल जाते हैं तो क्रिया खत्म हो जाती है और वे भावके स्वरूपमें हो करके प्रेमास्पदसे जुड़ जाते हैं। देह-धर्म वहीं छूट जाता है और मैंने अपनी दशा क्या देखी है? कि पूजा करते-करते दूसरी कोई बात याद आ गयी, कोई दूसरा काम याद आ गया, तो पूजा के item को भूल जाती हूँ। अन्तर मालूम हुआ? एक भावमें इतना रस उमड़ा कि उसमें अहं डूब गया—'मैंपन' रहा नहीं—प्यारा रहा, प्यारेका प्यार रहा, प्रीतम रहा, प्रीतमकी प्रीति रही। 'मैं' खत्म हो गया! तो जिस 'मैं' के भेदकी दीवारके कारण उससे हमारी दूरी मालूम होती थी, वह 'अहं' जो है, वह प्रेमकी धातुमें मिल गया।

[प्रेषक—श्रीअरविन्द शारदाजी]

व्यावहारिक अध्यात्म

मशहूर सूफी सन्त उमरका स्वभाव था कि वे अपने पास आनेवाले शिष्यों और आगंतुकोंकी परीक्षा लेते थे। वे ऐसे प्रश्न करते जिनके उत्तर देनेमें सामनेवालेको अड़चन होती और फिर उमर उसका समाधान कर देते थे। इसके पीछे उमरका उद्देश्य परोपकार या लोकहितका सन्देश ही देना होता था। कहते हैं कि एक बार उमर बगदाद-स्थित अपने ठिकानेसे जंगलकी ओर जा रहे थे। मार्गमें उन्हें एक चरवाहा मिला, जो बकरियाँ चरा रहा था।

उमरने उसकी परीक्षा लेनेकी ठानी, वे उसके पास गये और कहा—अपनी सैकड़ों बकरियोंमेंसे एक छोटी बकरी मुझे दे दो। चरवाहेने मालिकका हवाला देकर ऐसा करनेमें असमर्थता जतायी। तब उमरने कहा इतनी बकरियाँ हैं, यदि एक कम हो जायगी तो मालिकको पता भी नहीं चलेगा, लेकिन चरवाहा टस-से-मस न हुआ। उसने कहा—मेरा मालिक तो यहाँ नहीं है, लेकिन वह जो सारी दुनियाँका मालिक है, मुझे देख रहा है, यदि मैं एक भी बकरी आपको दूँगा तो भले ही मेरे मालिकको पता न चले, लेकिन उस बड़े मालिकको तो पता चल ही जायगा। तब मेरे ऊपर उसके विश्वासका क्या होगा, अतः आप मुझे माफ करें।

उमर प्रसन्न हो गये। परीक्षामें चरवाहा सौ प्रतिशत खरा उतरा। उमर उसे लेकर उसके मालिकके पास पहुँचे। उन्होंने मालिकको पूरा किस्सा सुनाया। वह चरवाहा गुलाम था। उमरने उसके मालिकसे कहा—तुमने इस खुदाके बन्देको अपना गुलाम क्यों बनाया? सैकड़ों बकरियोंमेंसे यह एक बकरीतक देनेको राजी नहीं हुआ। इसकी ईमानदारीको सलाम करना चाहिये। उमरके समझानेके बाद मालिकने चरवाहेको वर्षोंकी गुलामीसे आजाद कर दिया और साथमें हजारों अशर्फियाँ भी उसे उपहारमें दीं। उमरके लिये भी यह बड़ा दिन था, जब उनका परोपकारका लक्ष्य तो पूरा हुआ ही, एक छोटे आदमीसे बड़ी शिक्षा भी हासिल हुई। (संत निरंकारी)

[प्रेषक—हरिकृष्ण नीखरा (गुप्त)]

जड़ी-बूटियोंकी शिरोमणि—तुलसी

(श्रीराजीवकुमारजी वैद)

सर्वरोगनाशक और अद्वितीय स्वास्थ्यप्रदायक गुणों एवं विशिष्ट रुचिकर स्वादके कारण वनौषधियोंमें तुलसी रानीके पदपर प्रतिष्ठित हैं। अतुलनीय रोगनिवारक गुणोंने इसका नाम तुलसी रखा है। तुलसी अर्थात् जिसकी कोई तुलना नहीं। मनुष्य-शरीरका शायद ही कोई अंग ऐसा हो, जिसपर इसका सुप्रभाव न पड़ता हो, वस्तुतः यह सर्वरोगनाशक संजीवनी बूटी है। जहाँ एक ओर प्राचीन
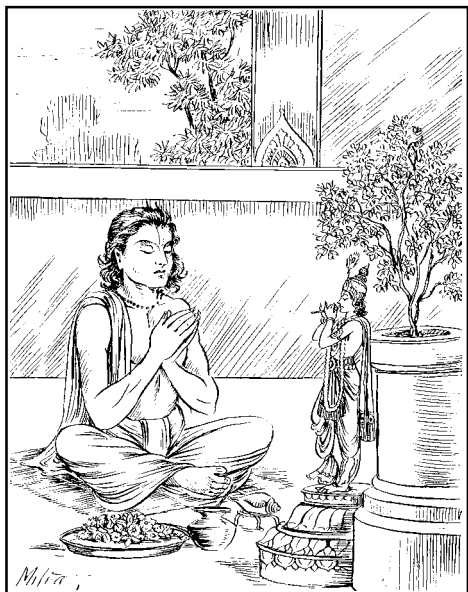
धर्मग्रन्थ इसके गुणोंके गीत गाते नहीं थकते, वहीं आधुनिक विज्ञान भी अनेक औषधीय तत्त्वोंकी उपस्थितिके आधारपर इसे संजीवनी बूटी सिद्ध करता है। तुलसीमें अनेक जैव सक्रिय रसायन पाये गये हैं, जिनमें ट्रैनिन, सेवोनिन, ग्लाइकोसाइड और एल्केलाइड्स प्रमुख हैं।

साधारण रोगोंकी तो बिसात ही क्या; कैंसर, रक्तचाप, हृदयके वाल्वका रोग, मस्तिष्कका भयंकर रोग जिनमें डॉक्टर-हकीम लोगोंने हार मान ली हो, तुलसी समूल नाश करनेकी शक्ति रखती है। इसी प्रकारके असाध्य करार दिये गये रोगोंके निवारणहेतु एक ऊँची पहुँचवाले सन्त तुलसी-प्रयोगका निम्न नुस्खा बताते हैं—तुलसीके पत्तोंका १० ग्राम रस और १० ग्राम शुद्ध शहद या चालीस-पचास ग्राम ताजा दही सुबह-दोपहर-शामको लेना चाहिये। इस नुस्खेका प्रयोगकर उनके सैकड़ों भक्तोंको चमत्कारिक लाभका अनुभव हुआ है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० शरण प्रसादने अपने सैनीटोरियममें हृदय रोगके रोगियोंपर तुलसीका औषधीय प्रयोग किया है। उन्होंने तुलसी काढ़ेका सेवन कराकर शत-प्रतिशत सफलतापूर्वक उन्हें रोगमुक्त किया है। सर्दी-जुकाम, बुखारमें प्रायः बड़े-बूढ़े तुलसीकी चायके सेवनकी सलाह देते हैं, पर यह सर्दी-जुकाम, खाँसी ही नहीं, अन्य अनेकों व्याधियोंको दूर करनेकी सामर्थ्य रखती है। एक लम्बी फेहरिश्त है—गुर्दोंकी पथरी, सफेद दाग या कोढ़, शरीरका मोटापा; वृद्धावस्थाकी दुर्बलता, पेचिश, अम्लता, मन्दाग्नि, कब्ज, गैस, दिमागी कमजोरी, स्मरण-शक्तिका अभाव, पुरानेसे पुराना सिरदर्द, रक्तचाप, श्वसन रोग, शरीरकी झुर्रियाँ आदि। तुलसी गुर्दोंकी कार्य-क्षमता बढ़ाती है। इसके सेवनसे विटामिन 'ए' एवं 'सी' की कमी दूर होती है।

इतने सारे गुणोंपर मुग्ध होकर यदि कोई तुलसीका सेवन करना चाहे तो किसी भी सुविधाजनक ढंगसे प्रयोग कर सकता है, यथा—तुलसीकी चाय बनाकर (काढ़ारूपमें) या दो-चार पत्ते चबाकर ऊपरसे पानी पीकर या रातको थोड़े-से पानीमें पत्ते डालकर रख दें सुबह उस पानीको पीयें। अन्य खाद्य पदार्थोंमें मिश्रित करके आदि। ताजी अवस्थामें तुलसीपत्रका उपयोग ही श्रेष्ठ है, यदि उपलब्ध न हो तो छायामें सुखाये पत्तोंके चूर्णका सेवन कर सकते हैं। जड़ एवं बीजचूर्ण या समग्र सूखे पौधेका चूर्ण भी इस्तेमाल किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि तुलसीके बीजोंमें वीर्यको गाढ़ा बनानेकी अद्भुत क्षमता होती है। बीजचूर्ण एक उत्तम वाजीकारक औषधि है। आचार्य प्रियव्रत शर्माके अनुसार मूत्रदाह एवं मूत्र-विसर्जनमें कठिनाई तथा ब्लैडरकी सूजनमें एवं पथरीमें बीजचूर्ण तुरंत लाभ करता है। कुष्ठकी यह सर्वश्रेष्ठ औषधि है। डॉ० जी० नादकर्णीके अनुसार तुलसीमें कुछ ऐसे गुण हैं, जिनके कारण यह शरीरकी विद्युतीय संरचनाको सीधे प्रभावित करती है।

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

कहो मारुति! गिद्धराज कैसे हैं ?

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

'वत्स मारुति! हमें बताओ, हमारे प्रिय पितृव्य, अयोध्याधिपति श्रद्धेय पिताश्रीके परम मित्र, उन्हींकी भाँति वात्सल्यनिधि गिद्धराज जटायु कैसे हैं? हमारे सौमित्रि, जिनका शौर्य अद्वितीय कहा जाता है, वे तो उनके सामने आते ही उनके पंखोंमें गुदगुदी-सी करते हुए, ऐसे परिहास-सुहास्यकी धारा बहाते थे कि मैं प्रभुके साथ हँसती क्या खिलखिलाती रह जाती थी। मिथिला और अयोध्या दोनों विस्मृत हो जाती थीं। न जाने कहाँ-कहाँसे वे दुर्लभ फल, डालियोंसहित ले आते थे कि हम खाते रह जाते थे। एक दिन हमने कहा, देव! आप तो हमें ऐसी कुक्षिम्भरि (पेटू), सुस्वादु-व्यामोही, विक्षिप्ता बना डालेंगे कि हमें बार-बार प्रभुसे आग्रह कर-करके पंचवटीमें आपका अतिथि बनने आना ही पड़ेगा।'

'अम्बिके! गिद्धराज, वे गिद्धराज अपने परम मित्र अयोध्याधिराजके साथ विहार करने नन्दन वन चले गये।'

'हाय' कहते हुए निमिनन्दिनी कुररीकी भाँति धीरे-धीरे बिलखती-बिलखती बोलीं, 'जिन्हें हम वयोवृद्ध मानते रहे, उनके भीम पराक्रमकी मैं साक्षी हूँ। न जाने कहाँसे हमारी पुकार सुनकर उड़ते हुए आ गये। पुष्पक विमानके तुंदिल (मोटे) पटोंको कर्पट (चिथड़े) करते हुए, स्तम्भोंके मध्य इक्षु (ईख-गन्ना)-के सघन क्षेत्रमें मत्त मातंगकी भाँति प्रवेश कर गये। मघा मेघमालाको चपल चंचला भी क्या चीरती होगी, जैसे वे निःशस्त्र सनाह-सज्जित अनेकानेक शस्त्रास्त्रधारी दशाननपर टूट पड़े। विशाल पंख फटकारकर उसका किरीट कहाँ उड़ा दिया, वह देखता रह गया। प्रखर चंचुके प्रहारोंसे उसका कवच क्षत-विक्षत कर डाला, स्कन्ध-वक्ष-भुजाएँ रक्तकी सरिताएँ सरसाने लगीं। उसकी उठी हुई गदाको सिरसे ऐसे ठुकराया कि वह उसीपर गिरती हुई, गिरकर रह गयी। उसे पुनः उठानेके उद्योगमें वह स्वयं गिर गया। उसके त्रिशूलको आता देखकर, दूर उड़कर, विमानके शिखरपर जाकर बैठ गये। फहराती हुई ध्वजाको नोंचकर आकाशमें लहरा दिया। वह धनुष लेकर शर रख ही रहा था कि उन्होंने प्रत्यंचा ही काट डाली। दशकन्धरसे समर करते जाते, कहते जाते, 'पुत्रि! भयभीत मत होना। राघव यहाँ नहीं हैं, तो कोई चिन्ता नहीं, उनका पितृव्य तो यहाँ है। यह तुम्हारा हरण करके कहाँ जायगा, अपने प्राणोंका हरण कराकर, यहीं कंकिनीके अंकमें अन्तिम समाधि लेगा। धैर्य रख, सुस्नुषे! (प्रिय पुत्रवधू!) धैर्य रख।'

'एक बार तो उन्होंने मुझे इस नृशंससे मुक्त भी करा लिया था, किंतु तभी उसने चन्द्रहास खड्गसे उनके पंख काट डाले। पंचवटीके वृक्षोंके पत्रोंको अपने रक्तसे रँगते हुए, वे प्रलयकालकी अगाध जलराशि-जैसे अपने ही रक्तकुण्डमें सूर्य-खण्डोंकी भाँति विलीन होकर रह गये। ऋषियोंकी भाँति शास्त्रोंकी व्याख्या करनेवाले, बटुकोंकी भाँति सस्वर मन्त्रोंके उच्चारणसे सामगानाचार्योंको भी चकित करनेवाले, इस वैदेहीकी रक्षामें अपने प्राण विसर्जित करते हुए वीरगतिको प्राप्त हो गये। मैं अपने मस्तकपर लगे इस पापका प्रायश्चित्त कैसे कर पाऊँगी।'

शोकविह्वल जानकीने धीरेसे उठकर, जलझारीसे जल लेकर गिद्धराजको श्वसुरके रूपमें जलांजलि प्रदान करते हुए कहा, 'आंजनेय! अब तुम प्रभुके पास जा रहे हो। उनके तृणरूपी जिस बाणके प्रतापसे सौमित्रि भी अपरिचित हैं, उन्हें कागवेषी देवेन्द्रपुत्र जयन्तके नेत्रहर्ता उस बाणका स्मरण कराना। मेरा प्रभुके प्रति यही सन्देश है।'

कहानी—

अछूत

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

सेठ रामजीलाल अपने कस्बेमें ही नहीं, बल्कि प्रान्त-भरमें प्रसिद्ध थे। उनके विभिन्न प्रकारके पाँच-छः कारखाने थे, जिनमें हजारों मजदूर काम करते थे। विदेशोंके साथ भी आयात-निर्यातका करोड़ों रुपयेका कारोबार था। व्यापारके सिवा सार्वजनिक क्षेत्रमें भी अच्छा नाम था। उनके द्वारा संचालित कई स्कूल, कॉलेज, छात्रावास और अस्पताल थे। वे निम्बार्क-सम्प्रदायके वैष्णव थे, इसलिये उन्होंने अपनी हवेलीके पास ही श्रीनाथजीका एक विशाल मन्दिर बनवाया था, जिसमें घरके हर व्यक्तिके लिये नित्य दोनों समय जाकर प्रसाद लेना जरूरी था।

सब तरहसे सम्पन्न और सुखी परिवार था परंतु सन्तान न होनेसे पति-पत्नी दुखी रहते थे। एक बार वे कुम्भके पर्वपर यात्राके लिये हरिद्वार गये। वहीं उन्हें दो वर्षका एक बच्चा सेवा-समितिके स्वयंसेवकोंद्वारा मिला। सेठानी तो लड़केको गोद लेते ही निहाल हो गयी। उसका गौर-वर्ण और सुन्दर रूप-रंग देखकर ही अनुमान लगा लिया कि जरूर यह किसी कुलीन घरानेका है। अपने गाँव आकर बहुत धूम-धामसे गोदके नेगचार किये गये। हजारों व्यक्तियोंको भोज दिया गया। इस अवसरपर एक अस्पताल और एक कॉलेजकी नींव डाली गयी। बच्चेका सुन्दर-सा नाम रखा गया—गोपाल कृष्ण। उस समय लोगोंने भी ज्यादा पूछताछकी जरूरत नहीं समझी।

बच्चेका आना कुछ ऐसा शुभ हुआ कि एक वर्षके भीतर ही उनकी एक पुत्री हुई। धन-दौलत भी रात-दिन बढ़ती गयी।

इसी प्रकार १७-१८ वर्ष आनन्दसे व्यतीत हो गये। गोपाल और छोटी बहन सुमन दोनों कॉलेजमें पढ़ते थे। आपसमें सगे भाई-बहनसे भी ज्यादा प्यार था। गोपाल पढ़नेके सिवा खेल-कूदमें भी हमेशा प्रथम या द्वितीय रहता था। एम०ए० में उसे कॉलेजमें प्रथम स्थान मिला।

एम०ए० करनेके बाद पढ़नेके लिये वह विदेश जाना चाहता था, परंतु सेठजी शादी करके उसे व्यापारमें लगा देना चाहते थे। सुमनने अपनी सुन्दर और सम्पन्न सहेलीका चयन भी कर लिया था—यहाँतक कि उसको कई बार अपने घर बुलाकर गोपाल और माता-पिताको दिखा भी दिया था। एक तरहसे बात पक्की हो गयी थी, केवल नेगचार होने बाकी थे।

उसी वर्ष बीकानेरके उत्तरी हिस्सेमें अकाल पड़ा। हजारों व्यक्ति अपने गाँव छोड़कर पशुओंके साथ मालवाकी तरफ जाने लगे।

सेठजीने अपने कस्बेमें उनके विश्रामके लिये व्यवस्था कर रखी थी। एक-दो दिन वहीं रहकर यात्री सुस्ता लेते थे। दूसरे स्वयंसेवकोंके साथ-साथ गोपाल और सुमन भी इस काममें दिलचस्पी लेते थे। एक दिन वे इसी प्रकारके एक यात्रीदलकी व्यवस्था कर रहे थे कि उनमेंसे एक अधेड़-सा व्यक्ति गोपालको घूर-घूरकर देखने लगा। थोड़ी देरमें अपनी पत्नीको भी बुला लाया।

सुमनने हँसकर कहा कि बाबा! इस प्रकार आप क्या देख रहे हैं; और आपकी आँखोंमें आँसू क्यों हैं?

थोड़ी देर तो वृद्ध चुप रहा, फिर सहमते हुए कहा—'बाई-सा, मेरा लड़का रामू आजसे १८ वर्ष पहले हरिद्वारके कुम्भ मेलेमें गुम हो गया था। उसका रंग भी इसी तरह साफ था। उसके बायें गालपर भी इसी प्रकारका निशान था। कुँवर साहबको देखकर हमें अपने खोये हुए पुत्रकी याद आ गयी है।'

घर जाकर सुमनने पिताजीको जब यह बात कही तो उनके चेहरेपर उदासी छा गयी।

रातमें उस वृद्धको बुलाकर पूछताछ की गयी तो

पता चला कि लोग जातिके चमार हैं। उस वर्ष कुम्भ-स्नान करनेके लिये गये थे। वहीं उनका एकमात्र पुत्र भीड़में खो गया, जिसका आजतक पता नहीं चला। लड़केके कुछ और भी चिह्न थे क्या? यह पूछनेपर उसने कहा कि उसके दायें हाथमें चोटका एक निशान भी था।

ये सब बातें गोपाल और उसकी माँ भी सुन रहे थे। उस समय वृद्धको १००-२०० रुपये देकर उसे यह कहकर विदा किया कि तुम्हें इस प्रकारकी फ़िजूल बातें नहीं करनी चाहिये। अच्छा हो कि तुम लोग कल यहाँसे चले जाओ।

परंतु ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं। लोगोंको अपना हर्ज करके भी दूसरोंके छिद्र ढूँढ़नेका शौक रहता है। यह बात धीरे-धीरे सारे कस्बेमें फैल गयी।

इधर सेठजी और सेठानीजी दोनों कमरा बन्द करके भीतर बैठ गये। बहुत कहने-सुननेपर भी भोजनके लिये बाहर नहीं निकले।

गोपाल हर प्रकारसे योग्य और समझदार था। वस्तु-स्थिति उसकी समझमें आ गयी थी। वह एक निश्चयपर आकर दूसरे दिन सुबह सुमनके पास जाकर कहने लगा, 'बहनजी! जो कुछ होना था, वह तो हो गया। परमात्मा जानता है कि इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है, फिर भी मेरे कारण आप लोगोंको इतना बड़ा अपमान सहना पड़ा। अब किसी तरह पिताजी और माताजीको भोजन करानेका उपाय करो, वे कलसे ही भूखे-प्यासे हैं।'

सुमनने देखा कि जो भाई उससे हमेशा हँसी-मजाक करता रहता और सुमन कहकर पुकारता था, वह 'बहनजी' कह रहा है और सहमा-सा थोड़ी दूरीपर बैठा हुआ है।

उन दोनोंने बहुत अनुनय-विनय करके कमरेका दरवाजा खुलवाया। देखा कि एक दिनमें ही पिताजी वृद्धसे लगने लगे हैं। माता एक तरफ अचेत पड़ी हुई हैं। अन्य दिनोंकी तरह आज गोपालने पिताके पैर नहीं छुए। कुछ दूरीसे कहा, 'पिताजी, मेरा आपका सम्बन्ध इतने दिनोंका ही ईश्वरको मंजूर था। अब आप हिम्मत करके मुझे विदा दें। माताजीका बुरा हाल है, उन्हें भी सान्त्वना दें। आपने जितना लिखा-पढ़ा दिया है, उससे २००-३०० रुपये माहवार आसानीसे कमा सकूँगा।'

बहुत देरका रोका हुआ उद्वेग एक बरसाती नालेके बाँधकी तरह टूट गया। इतने बड़े प्रतिष्ठित सेठ, छोटे बच्चेकी तरह जोर-जोरसे रोने लगे। कहने लगे—'मैं भले ही चमार हो जाऊँगा, परंतु किसी हालतमें भी तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। हो सकता है, तुमने जन्म अछूतोंके घर लिया हो, परंतु भला कोई बताये तो कि तुम-जैसे धार्मिक और निष्ठावान् युवक ऊँची जातिवालोंमें भी कितने हैं? राम तो १४ वर्षके लिये ही वनवास गये थे, परंतु तुम मुझे बुढ़ापेमें सदाके लिये छोड़कर जाना चाहते हो!'

इधर हवेलीमें सुबहसे ही किसी-न-किसी बहाने सगे-सम्बन्धी आकर इकट्ठे हो गये थे और झूठी सहानुभूति दिखा रहे थे। सब कुछ जानते-बूझते हुए भी 'क्या हुआ, कैसे हुआ' आदि पूछ रहे थे। साथमें उन चमारोंमेंसे भी कुछको ले आये थे।

थोड़ी देरमें ही गोपाल उन सबके सामने जाकर कहने लगा कि आपने जो कुछ सुना है, वह सब सत्य है। मैं कोलायतके चमारोंका लड़का हूँ। इसी समय घर और आपका गाँव छोड़कर जानेको तैयार हूँ। कृपा करके आप सेठजीको क्षमा कर दें। उन्होंने जो कुछ किया, बिना जानकारीके किया है। फिर बड़े-से-बड़े कुसूरका भी प्रायश्चित्त तो होता ही है।

परंतु सेठजी किसी तरह भी गोपालको छोड़नेको तैयार नहीं थे। आँसूकी धारा बह रही थी, वे उसे जबर्दस्ती गले लगाकर कहने लगे, 'सुमन भी कपड़े बाँधकर तुम्हारे साथ जानेकी तैयारी कर रही है, फिर भला हम अकेले इस घरमें रहकर ही क्या करेंगे? किसी दूसरे गाँवमें जाकर चमारोंके साथ रह लेंगे।'

गोपाल चाहता तो सेठजीके इन स्नेहपूर्ण उद्‌गारोंका लाभ उठा सकता था, परंतु उसने सुमन और सेठजीको अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर वहाँसे विदा ली। दूसरे दिन ही एक यात्रीदलके साथ मालवाके लिये रवाना हो गया। बहुत अनुनय-विनयके बावजूद भी उसने घरसे दो-चार धोती-कुर्तोंके सिवा अन्य कोई भी वस्तु साथमें नहीं ली।

विदाके समय एक प्रकारसे सारा गाँव ही उमड़ पड़ा था। कलतक इस घटनामें लोग ईर्ष्यायुक्त रस ले रहे थे, परंतु आज वे फूट-फूटकर रोते हुए देखे गये।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

गोपी-प्रेम

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

गोपी-प्रेमकी बात वही कह सकता है, जिसको गोपीभाव प्राप्त हो गया हो। सुननेका अधिकारी भी वही है। जबतक स्थूल, सूक्ष्म या कारण—किसी भी शरीरमें अहंभाव है, तबतक मनुष्यको गोपीभाव प्राप्त नहीं होता; अत: वह गोपीप्रेमका अधिकारी नहीं है। उद्धव-जैसे ज्ञानी और योगी, जो भगवान् श्रीकृष्णके सखा थे, जब व्रजमें गये, तब गोपियोंके प्रेमको देखकर ज्ञान और योगको भूल गये। उलटा अपने स्वामी और सखा श्रीकृष्णको हृदयहीन और कठोर बताने लगे और उन गोपियोंके प्रेमकी प्रशंसा करने लगे। यहाँतक कि व्रजके लता-पत्ता बननेमें भी अपना सौभाग्य मानकर गोपियोंकी चरण-रजकी कामना करने लगे। उन गोपियोंके प्रेमको भला कोई साधारण मनुष्य कैसे समझ सकता है?

जबतक मनुष्यके शरीरमें अभिमान रहता है, तबतक उसको किसी-न-किसी प्रकारके संयोगजनित सुखका लालच रहता है। गोपीभाव प्राप्त करनेके लिये वस्तुके संयोग और क्रियाजन्य सुखकी तो कौन कहे, चिन्तनतकके सुखका भी त्याग करना पड़ता है। जबतक यह भाव रहता है—अमुक वस्तु, अमुक व्यक्ति, अमुक परिस्थितिसे सुख मिलेगा, तबतक मनुष्य उनका दास बना रहता है। उसके मनमें दूसरोंको सुख पहुँचानेका भाव उत्पन्न नहीं होता। यही स्वार्थभाव है, जिसके रहते हुए गोपीभावकी बात समझमें नहीं आ सकती।

मानव-जीवनमें सत् और असत् दोनोंका संग रहता है। शरीर, संसार और भोगोंका संग ही असत्का संग है और अनन्त जीवन तथा नित्य आनन्दकी लालसा ही सत्का संग है। जिसमें केवल असत्का संग है वह भी मनुष्य नहीं है; क्योंकि असत्का संग तो पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंमें भी होता है एवं जिसमें केवल सत्का संग है, उसे भी मनुष्य नहीं कहा जा सकता। वह मनुष्यभावसे अतीत है। अत: गोपीभाव प्राप्त करनेके लिये स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरका तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले समस्त भोगोंका संग विवेकद्वारा छोड़ना पड़ता है। उसका त्याग सत्संगसे ही हो सकता है।

सांसारिक सुखभोगमें क्या-क्या दु:ख है, इसकी असलियतका ज्ञान सुखभोगसे उन साधकोंको होता है, जो अपने प्राप्त विवेकका आदर करते हैं। विवेकका आदर ही सत्संग है। इस सत्संगसे सुखभोगकी रुचि मिट जाती है और भगवान्के नित्य-नव प्रेमकी लालसा उत्पन्न हो जाती है। तब किसी-किसी अधिकारीको गोपीभावकी प्राप्ति होती है।

देहसे असंग होनेपर ही मनुष्य भोगवासनासे रहित हो सकता है। दोषोंका त्याग ही गुणोंका संग है। भोगोंकी चाह रहते हुए गुणोंका उदय और दोषोंका अभाव नहीं होता। अत: यह समझना चाहिये कि सब प्रकारकी चाहका अन्त होनेपर ही सत्का संग अर्थात् भगवत्प्रेमकी लालसा उत्पन्न होती है।

अत: जिस साधकको गोपीभाव प्राप्त करना हो और उनकी लीलामें प्रवेश करके गोपी-प्रेमकी बात समझनी हो, उसे चाहिये कि देहभावसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण भोगोंकी वासनाका त्याग कर दे; क्योंकि जबतक देहभाव रहता है— मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ—ऐसा भाव होता है, तबतक गोपी-चरित्र सुनने और समझनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। फिर गोपी-प्रेम क्या है—यह तो कोई समझ ही कैसे सकता है।

जब श्यामसुन्दरके प्रेमकी लालसा समस्त भोग-वासनाओंको खाकर सबल हो जाती है, तब तो साधकका व्रजमें प्रवेश होता है। उसके पहले तो व्रजमें प्रवेश ही नहीं होता। यह उस व्रजकी बात नहीं है, जहाँ लोग टिकट लेकर जाते हैं। यह तो उस व्रजकी बात है, जो प्रकृतिका कार्य नहीं है, जहाँकी कोई भी वस्तु भौतिक नहीं है, जिसका निर्माण दिव्य प्रेमकी धातुसे हुआ है। जहाँकी भूमि, ग्वाल-बाल, गोपियाँ, गायें और लता-पत्ता आदि सब-के-सब चिन्मय हैं। जहाँ जड़ता और भौतिक भावकी गन्ध भी नहीं है, उस व्रजमें प्रवेश हो जानेके बाद भी गोपीभावकी प्राप्ति बहुत दूरकी बात है। दास्यभाव, सख्यभाव और वात्सल्यभावके बाद कहीं गोपीभावकी उपलब्धि होती है। फिर साधारण मनुष्य उस गोपी-प्रेमकी बात कैसे समझ सकते हैं?

जबतक देहभाव रहता है, तभीतक भोगवासना और अनेक प्रकारके दोष रहते हैं और तभीतक दोषोंका नाश करके चित्तशुद्धिके लिये साधन करना रहता है। चित्तका सर्वथा शुद्ध हो जाना और सब प्रकारसे असत्का संग छूट जाना ही व्रजमें प्रवेश है। अत: जिस साधकको गोपी-प्रेम प्राप्त करना हो, उसे चाहिये कि पहले मुक्तिके आनन्दतकका लालच छोड़कर व्रजमें प्रवेशका अधिकार प्राप्त करे और उसके बाद भगवान्की कृपापर निर्भर होकर गोपीभावको प्राप्त करे।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

सभी रूपों तथा स्थितियोंमें भगवान्‌को देखें

सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला था। आपका स्वास्थ्य इधर ठीक नहीं रहता, सो यह तो शरीरका स्वरूप ही है। आप विद्वान् हैं; आपने शास्त्रोंका अध्ययन किया है; आप जानते हैं—जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि इस पांचभौतिक शरीरके साथ लगी ही हुई हैं। जो बना है, वह नष्ट होगा ही—जो जन्मा है, वह मरेगा ही। मृत्युसे डरनेकी आवश्यकता नहीं। विचार करें तो जन्मकी अपेक्षा मृत्युमें कल्याणकी सम्भावना अधिक है और मृत्यु होते ही परमानन्दस्वरूपकी प्राप्ति सम्भव है। जन्म ग्रहण करनेमें तथा जन्म होनेपर शिशु-अवस्थामें अज्ञानतामें दु:ख है; वह अज्ञानजनित दु:ख किसी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता; पर मृत्युके समय यदि सावधानी रहे तो मृत्युकालमें सुख रहता है और मृत्यु होते ही 'परम सुख' मिल सकता है। 'जन्म' होनेपर अकल्याणकी कोई सम्भावना ही नहीं; क्योंकि फिर जन्म ही नहीं होता। सुधरी मृत्युका अर्थ है—मृत्युके समय हमारी ब्राह्मी स्थिति रहे या श्रीभगवान्‌की अनन्य अखण्ड स्मृति रहे। जहाँ भगवान्‌की अखण्ड स्मृति है, वहाँ जगत्‌की सर्वथा विस्मृति है। ऐसी स्थितिमें मृत्यु सुखपूर्वक होती है और मृत्युके उपरान्त तुरंत ही मृत्युकालीन भगवत्स्मृतिके अनिवार्य फलस्वरूप भगवत्प्राप्ति हो जाती है; जीव कृतकृत्य हो जाता है।

मृत्यु कब आ जाय, इसका पता नहीं; अभी अगले ही क्षण मृत्यु हो सकती है। अतएव अभीसे भगवान्‌की अखण्ड स्मृतिका साधन करने लगना चाहिये। चाह सच्ची तथा तीव्र होगी और भगवत्कृपाका भरोसा होगा तो भगवान्‌की स्मृति अखण्ड हो जायगी—वही अनन्य हो जायगी। फिर मृत्यु चाहे जब आ जाय, आपके मनकी वृत्ति उसे भगवत्स्मृतिमें ही लगी मिलेगी। अत: वह मृत्यु बड़ी मंगलमयी बन जायगी; सारी भावी मृत्युओंको मारकर वह स्वयं ही मर जायगी। ऐसी भगवत्प्राप्ति करानेवाली मृत्यु ही 'सुधरी मृत्यु' है। इस प्रकार मृत्यु सुधरे, इसके लिये प्रयत्नमें तुरंत लग जाना चाहिये।

आप बुद्धिमान् हैं, सब समझते हैं। इस जगत्-प्रपंचमें कहीं कुछ भी सार नहीं है। वास्तवमें जगत् है ही नहीं; सर्वथा असत् है, अज्ञानसे ही दिखायी दे रहा है और यदि कहीं अज्ञानकी सत्ता मान लेनेपर यह 'है' तो है—क्षणभंगुर, अनित्य, अपूर्ण, दु:खयोनि, दु:खालय। अतएव इससे विरक्त होकर भगवत्स्मृतिमें लग जाइये—चाहे इसे 'दु:खरूप' मानकर, चाहे सर्वथा 'असत्' मानकर।

यों तो सारी ही उनकी लीला है। भगवान्‌की लीलामें और लीलामय भगवान्‌में नित्य अभेद है; अतएव अस्वस्थता और मृत्युके रूपमें भी उन लीलामयकी स्वरूपाभिन्न लीला ही हो रही है। यह समझकर इस अस्वस्थतामें भी उनके मंगल दर्शन कीजिये। यही आपके रोगकी परम औषधि है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

तन्त्र-मन्त्रके नामपर ठगी

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने जो घटनाएँ लिखीं और तान्त्रिकों तथा ज्योतिषियोंके द्वारा बार-बार धोखा खाने एवं भयानक रूपसे नुकसान उठानेकी बात लिखी, सो अवश्य ही बड़े दु:खकी बात है। मेरे विश्वासके अनुसार तन्त्र-मन्त्र, उसके प्रयोग, ज्योतिषशास्त्र—फलित ज्योतिष, ग्रहशान्ति-कर्म आदि सब सत्य हैं। अनुष्ठानोंसे देवता प्रत्यक्ष होते हैं, देवाराधनसे कार्योंमें सफलता प्राप्त होती है और शास्त्रीय प्रबल अनुष्ठानोंसे नवीन प्रारब्धका निर्माण भी होता है—सिद्धान्तत: ये सभी सत्य हैं, परंतु इनके नामपर आजकल ठगी और धोखाधड़ी बहुत चल रही है। मेरी जानकारीके सम्बन्धमें पूछा, सो सच्ची बात तो यह है कि दो—एक अनुभवी पुरुषोंके सिवा शेष लोगोंमें मुझे अधिकांशमें या तो अनुभवहीन तथा क्रियाशून्य केवल शास्त्र पढ़कर बतानेवाले लोग मिले या धोखा देकर पैसे

ऐंठनेवाले। कई ज्योतिषियोंके चक्करमें पड़कर लाखों-करोड़ों रुपयोंकी तथा मान-प्रतिष्ठाकी हानि सहन करनेवाले लोगोंकी घटनाएँ मैं जानता हूँ। ऐसे कई कथित तान्त्रिक तथा सफल मन्त्रानुष्ठानकारी लोगोंसे मेरा काम पड़ा है, जो लिखने-पढ़नेमें और लम्बी-चौड़ी डींग हाँकनेमें बड़े ही चतुर हैं, पर लोगोंको बड़ी-बड़ी आशा-विश्वासकी कल्पित कथाएँ सुनाकर उनके लिये सफल अनुष्ठानकी या यन्त्रादि निर्माणकी बात कहकर हजारों-हजारों रुपये ठगते रहते हैं। मैं अनुभवी सफल तान्त्रिकों तथा अनुष्ठान बताने-करनेवाले लोगोंकी खोजमें रहा—बहुत-से प्रसिद्ध लोगोंसे मैंने सम्पर्क स्थापित किया; क्योंकि मैं उनके द्वारा विपत्तिग्रस्त लोगोंको विपत्तिसे बचाना चाहता था, परंतु इनके प्रयोगकी सफलताके द्वारा मुझे पूरा विश्वास करानेवाले विरले ही मिले। जो एक-दो सज्जन मिले थे, वे इस समय संसारमें नहीं हैं।

हस्तरेखा देखकर ठीक जन्म-कुण्डली बना देनेवाले, मूकप्रश्नको या प्रश्न लिखकर दूसरेकी मुट्ठीमें रखे हुए प्रश्नको अक्षरशः बतानेवाले, बिना देखे बही-खातोंमें कहाँ क्या लिखा है—यह बतानेवाले, मनकी बात बता देनेवाले, फल-मिठाई-मेवा, रुपये-पैसे आदि मँगा देनेवाले एवं अन्यान्य चमत्कार दिखानेवाले तथा सिद्धियोंकी बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले भी कई मिले। पर उनमें प्रायः सभी पैसे बटोरनेवाले ही मिले और उन्होंने भविष्यकी जो कुछ महत्त्वपूर्ण बातें बतलायीं, उनमेंसे शायद ही कोई सही निकली।

आपकी ही भाँति मेरे पास बहुत-से लोग अपने-अपने अभाव, दुःख-कष्टोंको लेकर आते हैं, पत्र लिखते हैं, मुझसे किन्हीं अच्छे, अभाव तथा कष्ट-दुःखोंको अनुष्ठानादिके द्वारा दूरकर सकें—ऐसे पुरुषोंके नाम-पते पूछते हैं; पर बार-बार धोखा खाये जानेके कारण मैं किन्हींका भी नाम-पता उन्हें नहीं बता सकता। इसीलिये आपको भी ऐसे नाम-पते बतानेमें असमर्थ हूँ। पहले किन्हींके सफल अनुष्ठानको देखकर मुझे स्वयं उनपर पूरा विश्वास हो जाय, तब मैं दूसरोंको उनका नाम बताऊँ; अन्यथा लोगोंको ठगानेमें और व्यर्थ ही शास्त्रोंपर अश्रद्धा उत्पन्न करानेमें मैं कारण नहीं बनना चाहता। अतएव आपको क्या लिखूँ। आप किसीके भी फेरमें न पड़ें। उचित समझें और कर सकें तो स्वयं श्रद्धापूर्वक भागवतोक्त 'गजेन्द्रस्तुति' और 'नारायणकवच' के ग्यारह-ग्यारह पाठ प्रतिदिन कीजिये। ये दोनों पुस्तकें गीताप्रेससे प्रकाशित हैं। साथ ही—

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

—इस मन्त्रका सम्पुट लगाकर पैंतालीस दिनोंतक दुर्गासप्तशतीका प्रतिदिन एक पाठ कीजिये। आशा है, इससे आपको लाभ होगा। शेष भगवत्कृपा।

(३)

भगवान्‌के मंगलविधानपर विश्वास करनेसे शान्ति मिलती है

सम्मान्या बहन, सस्नेह हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपका दुःख यथार्थ है और यह मिटना भी चाहिये; पर पता नहीं, प्रारब्धके भोग कैसे हैं। आप अपने मनमें अपने पतिके प्रति सदा सद्भाव रखिये, उनकी मंगलकामना कीजिये, जो करती ही हैं। जो कष्ट वे आपको दे रहे हैं—उसे भगवान्‌का विधान मानकर सहन कीजिये। आपका इस जगत्‌का सम्बन्ध आरोपित है। यहाँ तो स्वाँगके अनुसार अनासक्तभावसे खेल करना है। आप 'शरीर' तथा 'नाम' नहीं हैं, आत्मा हैं, आपका सम्बन्ध भगवान्‌से है। भगवान् आपको अपने धाममें सुख-निवास देनेके लिये इन दुःखोंके द्वारा तपाकर पवित्र कर रहे हैं। इन्हें दुःख न मानकर भगवान्‌का मंगलकारी मंगल विधान मानिये। भगवान् आपके नित्य सुहृद् हैं—वे कभी आपका अहित नहीं करते। जैसे सुयोग्य सर्जन रोगीके कल्याणके लिये उसके अंग काटता (ऑपरेशन करता) है, वैसे ही इसे परम सुहृद् भगवान्‌का किया हुआ ऑपरेशन मानिये। भगवान्‌ने कहा है कि 'मेरी सुहृदयतापर विश्वास करते ही, उसे जानते ही शान्ति मिल जाती है'—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।

शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ७। २ बजेतक	सोम	आश्लेषा रात्रिमें ९। ३९ बजेतक	२५ जनवरी	**सिंहराशि** रात्रि ९। ३९ बजेसे, **अभिजितका सूर्य** रात्रिमें १०। ८ बजे।
द्वितीया ,, ७। ४८ बजेतक	मंगल	मघा ,, ११। १२ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** रात्रि ८। २५ बजेसे, **गणतन्त्रदिवस, मूल** रात्रिमें ११। १२ बजेतक।
तृतीया दिनमें ९। १ बजेतक	बुध	पू०फा० ,, १। १३ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ४० बजे।
चतुर्थी ,, १०। ४० बजेतक	गुरु	उ०फा० ,, ३। ३२ बजेतक	२८ ,,	**कन्याराशि** प्रात: ७। ४७ बजेसे।
पंचमी ,, १२। ३८ बजेतक	शुक्र	हस्त रात्रिशेष ६। ६ बजेतक	२९ ,,	× × ×
षष्ठी ,, २। ४७ बजेतक	शनि	चित्रा अहोरात्र	३० ,,	**भद्रा** दिनमें २। ४७ बजेसे रात्रिमें ३। ५१ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें ७। २४ बजेसे।
सप्तमी सायं ४। ५५ बजेतक	रवि	चित्रा दिनमें ८। ४२ बजेतक	३१ ,,	**श्रीरामानन्दाचार्य-जयन्ती।**
अष्टमी रात्रिमें ६। ५४ बजेतक	सोम	स्वाती ,, ११। १३ बजेतक	१ फरवरी	**अष्टकाश्राद्ध।**
नवमी ,, ८। ३५ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, १। २७ बजेतक	२ ,,	**वृश्चिकराशि** प्रात: ६। ५३ बजेसे।
दशमी ,, ९। ४९ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, ३। २० बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १२ बजेसे रात्रिमें ९। ४९ बजेतक, **मूल** दिनमें ३। २० बजेसे।
एकादशी ,, १०। ३६ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा सायं ४। ४५ बजेतक	४ ,,	**धनुराशि** सायं ४। ४५ बजेसे, **षटतिला एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, १०। ४९ बजेतक	शुक्र	मूल ,, ५। ४० बजेतक	५ ,,	**तिलद्वादशी, मूल** सायं ५। ४० बजेतक।
त्रयोदशी ,, १०। ३३ बजेतक	शनि	पू० षा० रात्रिमें ६। ५ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। ३३ बजेसे, **मकरराशि** रात्रिमें १२। ४ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत, धनिष्ठाका** सूर्य रात्रिमें ४। ४३ बजे।
चतुर्दशी ,, ९। ४७ बजेतक	रवि	उ० षा० ,, ६। ० बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। १० बजेतक।
अमावस्या ,, ८। ३६ बजेतक	सोम	श्रवण सायं ५। ३० बजेतक	८ ,,	**कुंभराशि** रात्रिशेष ५। ५ बजेसे, **सोमवती-मौनी अमावस्या, पंचकारम्भ** रात्रिशेष ५। ५ बजे।

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७। १ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा सायं ४। ३९ बजेतक	९ फरवरी	× × ×
द्वितीया सायं ५। ६ बजेतक	बुध	शतभिषा दिनमें ३। २७ बजेतक	१० ,,	**चन्द्रदर्शन।**
तृतीया दिनमें ३। ० बजेतक	गुरु	पू० भा० ,, २। २ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १। ५२ बजेसे, **मीनराशि** दिनमें ८। २३ बजेसे।
चतुर्थी ,, १२। ४२ बजेतक	शुक्र	उ० भा० ,, १२। २७ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ४२ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** दिनमें १२। २७ बजेसे।
पंचमी ,, १०। २० बजेतक	शनि	रेवती ,, १०। ४६ बजेतक	१३ ,,	**मेषराशि** दिनमें १०। ४६ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें १०। ४६ बजे, **श्रीवसन्तपंचमी, कुम्भसंक्रान्ति** रात्रिमें ६। १९ बजे।
षष्ठी प्रात: ७। ५८ बजेतक सप्तमी रात्रिशेष ५। ४२ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ९। ७ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५। ४२ बजेसे, **रथसप्तमी, अचला सप्तमी। मूल** दिनमें ९। ७ बजेतक।
अष्टमी रात्रिमें ३। ३६ बजेतक	सोम	भरणी प्रात: ७। ३३ बजेतक कृत्तिका रात्रिशेष ६। ९ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** सायं ४। ३९ बजेतक, **वृषराशि** दिनमें १। १२ बजेसे।
नवमी ,, १। ४२ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, ४। ५८ बजेतक	१६ ,,	**महानन्दानवमी।**
दशमी ,, १२। ८ बजेतक	बुध	मृगशिरा रात्रिमें ४। ९ बजेतक	१७ ,,	**मिथुनराशि** सायं ४। ३३ बजेसे।
एकादशी ,, १०। ५६ बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,, ३। ४१ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें ११। ३२ बजेसे रात्रिमें १०। ५६ बजेतक, **जया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, १०। १० बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,, ३। ३९ बजेतक	१९ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ९। ४० बजेसे, **सायन मीनका सूर्य** दिन २। ५७ बजे।
त्रयोदशी ,, ९। ५३ बजेतक	शनि	पुष्य ,, ४। ६ बजेतक	२० ,,	**शनिप्रदोषव्रत,** शतभिषाका सूर्य दिनमें ८। २० बजे, **मूल** रात्रिमें ४। ६ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १०। ७ बजेतक	रवि	आश्लेषा रात्रिशेष ५। ३ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। ७ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिशेष ५। ३ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १०। ५४ बजेतक	सोम	मघा अहोरात्र	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ३० बजेतक, **माघी पूर्णिमा, माघ स्नान** समाप्त।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १२।७ बजेतक	मंगल	मघा प्रातः ६। ३१ बजेतक	२३फरवरी	**मूल** प्रातः ६। ३१ बजेतक।
द्वितीया ,, १।४७ बजेतक	बुध	पू० फा० दिनमें ८।२५ बजेतक	२४ ,,	**कन्याराशि** दिनमें ३। ० बजेतक।
तृतीया ,, ३।४५ बजेतक	गुरु	उ०फा० ,,१०।४२ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ४६ बजेसे रात्रिमें ३। ४५ बजेतक।
चतुर्थी रात्रिशेष ५।५३ बजेतक	शुक्र	हस्त ,, १।१३ बजेतक	२६ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें २। ३२ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ४ बजे।
पंचमी अहोरात्र	शनि	चित्रा ,, ३।५१ बजेतक	२७ ,,	**सर्वार्थसिद्धियोग** दिनमें ३। ५१ बजेसे।
पंचमी दिनमें ८।० बजेतक	रवि	स्वाती रात्रिमें ६।२४ बजेतक	२८ ,,	× × ×
षष्ठी ,, ९।५५ बजेतक	सोम	विशाखा ,, ८।४२ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ५५ बजेसे रात्रिमें १०। ४५ बजेतक।
सप्तमी ,, ११।३३ बजेतक	मंगल	अनुराधा ,, १०।४० बजेतक	१ मार्च	**मूल** रात्रिमें १०। ४० बजेसे।
अष्टमी ,, १२।४४ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, १२।१२ बजेतक	२ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें १२। १२ बजेसे, **श्रीजानकी-जयन्ती।**
नवमी ,, १।२७ बजेतक	गुरु	मूल ,, १।१५ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १। ३३ बजेसे, **मूल** रात्रिमें १। १५ बजेतक।
दशमी ,, १।३७ बजेतक	शुक्र	पू० षा० ,, १।४६ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ३७ बजेतक, **पूर्वाभाद्रपदका सूर्य** दिनमें १। ५३ बजे।
एकादशी ,, १।१७ बजेतक	शनि	उ० षा० ,, १।४८ बजेतक	५ ,,	**मकरराशि** प्रातः ७। ४५ बजेसे, **विजया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,,१२।२७ बजेतक	रवि	श्रवण ,, १।२३ बजेतक	६ ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ११।१२ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, १२।३६ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।१२ बजेसे रात्रिमें १०।२४ बजेतक, **महाशिवरात्रिव्रत, कुम्भराशि** दिनमें १। ० बजे, **पंचकारम्भ** दिनमें १। ० बजे।
चतुर्दशी ,, ९।३५ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, ११।२९ बजेतक	८ ,,	**श्राद्धादिकी अमावस्या।**
अमावस्या प्रातः ७।३७ बजेतक प्रतिपदा रात्रिशेष ५।२८ बजेतक	बुध	पू० भा० ,, १०।६ बजेतक	९ ,,	**अमावस्या, मीनराशि** सायं ४। २६ बजेसे, **ग्रस्तोदित खण्ड सूर्यग्रहण।**

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
द्वितीया रात्रिमें ३।१० बजेतक	गुरु	उ० भा० रात्रिमें ८।३३ बजेतक	१० मार्च	**मूल** रात्रिमें ८। ३३ बजेसे।
तृतीया ,,१२।४६ बजेतक	शुक्र	रेवती ,, ६।५३ बजेतक	११ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ६।५३ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ६।५३ बजे।
चतुर्थी ,,१०।२२ बजेतक	शनि	अश्विनी सायं ५।१३ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें ११। ३४ बजेसे रात्रिमें १०। २२ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** सायं ५। १३ बजेतक।
पंचमी ,, ८।५ बजेतक	रवि	भरणी दिनमें ३।३७ बजेतक	१३ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें ९। १६ बजेसे।
षष्ठी सायं ५।५७ बजेतक	सोम	कृत्तिका ,, २।२० बजेतक	१४ ,,	**मीन संक्रान्ति** दिनमें १।३३ बजे, **खरमासारम्भ, वसन्त ऋतु प्रारम्भ।**
सप्तमी दिनमें ४।२ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, १२।५६ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। २ बजेसे रात्रिमें ३। १६ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें १२। ३० बजेसे, **होलाष्टकारम्भ।**
अष्टमी ,,२।२९ बजेतक	बुध	मृगशिरा ,, १२।३ बजेतक	१६ ,,	**बुधाष्टमी।**
नवमी ,,१।१७ बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,,११।२८ बजेतक	१७ ,,	**कर्कराशि** रात्रिशेष ५।२२ बजेसे, **उत्तराभाद्रपदका सूर्य** रात्रिमें ९।४५ बजे।
दशमी ,,१२।३२ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,,११।२१ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। २४ बजेसे।
एकादशी ,,१२।१४ बजेतक	शनि	पुष्य ,,११।४२ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। १४ बजेतक, **आमलकी एकादशीव्रत (सबका), मूल** दिनमें ११। ४२ बजेसे।
द्वादशी ,, १२।२७ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, १२।३२ बजेतक	२० ,,	**सिंहराशि** दिनमें १२। ३२ बजेसे, **प्रदोषव्रत, सायन मेषका सूर्य** दिनमें १२। २४ बजे।
त्रयोदशी ,, १।१५ बजेतक	सोम	मघा ,,१।५५ बजेतक	२१ ,,	**शक सं० १९३८ प्रारम्भ, मूल** दिनमें १। ५५ बजेतक।
चतुर्दशी ,, २।२९ बजेतक	मंगल	पू० फा० ,,३।४४ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें २।२९ बजेसे रात्रिमें ३।१९ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें १०।१८ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा, होलिकादाह** रात्रिमें ३।१९ बजे भद्राके बाद।
पूर्णिमा ,, ४।८ बजेतक	बुध	उ० फा० सायं ५।५७ बजेतक	२३ ,,	**पूर्णिमा, काशीमें होली, चैतन्य महाप्रभु-जयन्ती।**

कृपानुभूति

निरक्षर श्रद्धालु भक्तपर श्रीमद्भगवद्गीताकी कृपा

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।'

(योगदर्शन २। ४४)

अर्थात् स्वाध्यायसे इष्टदेवताका साक्षात्कार होता है। यहाँ स्वाध्यायका अर्थ है—मन्त्र-जप, लेकिन एक अच्छे सन्तने अपने सहज ढंगसे स्वाध्यायकी जो व्याख्या की, वह भी भूलनेयोग्य नहीं है। वे कहते थे—'स्वाध्यायका अर्थ है 'स्व' अपना + अध्याय अर्थात् वह ग्रन्थ या मन्त्र, जिसे तुमने अपनाया है, वह तुम्हारे अपने जीवनका एक अंग—अध्याय हो जाय।'

पाठ करनेसे एक विशेष प्रकारकी शक्ति प्राप्त होती है। जैसे स्नान करनेसे शरीर स्वच्छ होता है और स्फूर्ति आती है, वैसे ही नित्यपाठ आन्तरिक स्नान है। इससे अन्त:करणकी शुद्धि होती है और मानसिक प्रेरणा मिलती है साधनके लिये।

आप गीता, भागवत या श्रीरामचरितमानसका कोई श्लोक अथवा चौपाई कण्ठ कर लें, जो आपको बहुत साधारण लगे और मन-ही-मन उसे बार-बार दुहराते रहें। धैर्यपूर्वक दो-चार दिन उसको दुहरायें। ऐसा करनेसे अचानक किसी समय आपको उसका ऐसा अर्थ सूझेगा, जो स्वयं आपको चकित कर देगा। यह उसके उस अर्थपर पड़ा आवरण उसके बार-बार पाठ करनेसे दूर हुआ। इसी प्रकार अन्त:करणमें ही स्थित परमात्मतत्त्वपर जो आवरण है, वह पाठ करते रहनेसे दूर होता है या शिथिल पड़ता है।

पाठ करना तो फिर भी बड़ी बात है, पाठ करनेका संकल्प और उसकी चेष्टा भी चमत्कार उत्पन्न करती है, यह मैंने देखा है।

वाराणसी जिलेमें एक गाँव है महुअर। जब देशका स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था, तब उस गाँवके एक क्षत्रिय युवक सत्याग्रह आन्दोलनमें मेरे साथी थे। नाम तो उनका जयनाथसिंह था, किंतु सब उन्हें जैनूसिंह कहते थे। उनके सगे भाई देवनाथसिंह, जिन्हें देऊसिंह कहा जाता था, मुझसे सम्भवत: सन् १९३८ ई० में मिले। वे सत्याग्रह आन्दोलनमें तो सम्मिलित नहीं हुए थे, किंतु मुझे जानते थे।

मैं सन् १९३६ ई० से ही वाराणसीसे दूर हो गया था और सन् १९३७ ई० से मेरठसे निकलने वाले मासिक-पत्र 'संकीर्तन' का सम्पादन करने लगा था। उस समय मैं मेरठसे अपनी जन्मभूमिके क्षेत्रमें बहुत थोड़े दिनोंको आया था।

एक दिन देवनाथसिंह आये और मेरे समीप कुछ समयतक बैठे रहे, फिर एकान्त मिलनेपर बोले—'मेरी इच्छा गीता-पाठ करनेकी होती है। अब इस आयुमें गाँवके किसी व्यक्तिसे अक्षर पढ़ने बैठनेमें लज्जा आती है। कोई उपाय बतलाइये।'

वे जमींदार थे। उन दिनों सम्पन्न ग्रामीण किसान-जमींदार अपने या अपने पुत्रोंके लिये पढ़ना-पढ़ाना अनावश्यक मानते थे। कह देते थे—'लड़केको पढ़ाकर क्या करना है। उसे कोई नौकरी करनी है?'

मैं जानता था कि जयनाथसिंह, जो मेरे कांग्रेस-आन्दोलनके साथी थे, उन्होंने भी कांग्रेस-आन्दोलनमें आनेके पश्चात् अक्षरज्ञान सीखा और धीरे-धीरे हिन्दीकी पुस्तकें पढ़ने लगे थे। उनके भाई देवनाथसिंह भी निरक्षर ही थे।

किसी भी आयुमें पढ़ने लगना कोई लज्जाकी बात नहीं है, यह भले सत्य है, किंतु ३०-३५ वर्षके ग्रामीण युवकको यह तथ्य समझा देना मुझे सरल नहीं लगा और जिसे वर्णमालाकी पहचान भी न हो, उसे गीता-पाठ करनेकी भला कौन-सी युक्ति मैं बतला देता।

यह तो अब मैं जानता हूँ कि बाबा नन्दजीने भी

अपने लालाको पढ़ाया नहीं, छोटेपनमें ही गोचारणमें लगा दिया, किंतु यह नन्हा अनपढ़ गोपाल, जिसे चाहे उसे सहज महापण्डित बना देता है।

उस समय मैंने देऊ (देवनाथसिंह)-को समझा दिया—गीता भगवान्‌की वाणी होनेसे भगवान्‌का स्वरूप है, अतः गीताका स्पर्श भी गीता-पाठ जैसा ही है। आप प्रतिदिन गीताकी पुस्तकको प्रणाम कर लिया करें और पंक्तियोंपर अँगुली फिरा लिया करें।

उन्होंने मेरी बातपर विश्वास कर लिया। सन्तुष्ट होकर चले गये। पीछे कहींसे गीताप्रेस (गोरखपुर)-से छपी गीताके मूल श्लोकोंकी बड़े अक्षरोंकी पुस्तक खरीद लाये और नियमसे प्रतिदिन प्रारम्भसे अन्ततक उसकी पंक्तियोंपर अँगुली फिराने लगे।

अब मुझे स्मरण नहीं है कि वर्ष, डेढ़ वर्ष या दो वर्षमें मैं फिर मेरठसे उधर गया, किंतु मेरे उधर जानेका किसीसे पता लगा तो देवनाथसिंह फिर मेरे पास आये। उन्होंने बड़ी नम्रतासे मुझसे कहा—'मैं गीताकी पंक्तियोंपर अँगुली फिराता हूँ तो मेरे मुखसे कुछ निकलता है। मैं क्या बोलने लगता हूँ, मुझे पता नहीं है। आप थोड़ी देर एकान्तमें चलकर इसे देख लीजिये।'

मैं उनको लेकर एकान्तमें गया। उन्होंने अपनी पुस्तक खोली, जो वह साथ लाये थे। मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, जब मैंने देखा कि वे जिन पंक्तियोंपर अँगुली फेरते हैं, उनका शुद्ध उच्चारण उनके मुखसे होता है।

मैंने उन्हें गीताकी दूसरी पुस्तक तो नहीं दी। मुझे आवश्यकता नहीं लगी और न वहाँ मेरे पास दूसरी मोटे या मझोले टाइपकी कोई प्रति थी, किंतु उस प्रतिको बीच-बीचमेंसे खोलकर कई स्थानोंपर उनसे अँगुली फिरवाकर देख लिया कि वे जिस पंक्तिपर अँगुली फिराते थे, उसका उनके मुखसे शुद्ध उच्चारण होता था।

यह तथ्य उन्हें मैंने बतलाया तो वे भाव-विह्वल हो गये, उनकी आँखोंसे अश्रु बहने लगे। गद्‌गद स्वरमें बोले—'मुझ-जैसे साधारण व्यक्तिपर भगवान्‌की इतनी कृपा!'

इसके बाद वे मुझे मिले प्रयाग-झूसीमें और हरिद्वारमें। तब थे तो गृहस्थ-वेशमें ही, किंतु पैदल अकेले पूरे भारतकी तीर्थयात्रा कर रहे थे। तीन बार उन्होंने लगातार यह पैदल तीर्थयात्रा की और चौथी बार ऐसी ही यात्रा करते द्वारका पहुँचे तो श्रीद्वारकाधीशके दर्शन करते समय ही मन्दिरमें उनका शरीर छूट गया।

यह घटना इतने विस्तारसे देनेका कारण यह है कि मैं इसमें बहुत-कुछ प्रत्यक्ष साक्षी रहा हूँ। सुनी-सुनायी बात नहीं है और पाठ तथा कन्हाईकी कृपाका अच्छा उदाहरण है।

श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध कथावाचक एवं विद्वान् पण्डित श्रीनाथजी पुराणाचार्य (वृन्दावन) इसे 'ग्रन्थ-कृपा' कहते हैं। उनका कहना है—'गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस-जैसे ग्रन्थ मन्त्रात्मक हैं और चेतन हैं। इनका श्रद्धापूर्वक आश्रय लिया जाय तो पाठ करनेवालेपर ये कृपा करते हैं।

वृन्दावनमें अनाज मण्डीमें लगभग सन् ३७-३८ में एक अत्यन्त वृद्ध महात्माके दर्शन किये थे। उनका नाम श्रीअवधदासजी था। वे श्रीमद्भागवतको ही आराध्य मानते थे और सदा भागवतका मासिक क्रमसे पाठ करते थे। वृद्धावस्थामें दृष्टिलोप हो जानेपर भी आसनपर बैठकर ग्रन्थ सामने रखकर पाठ करते थे। ग्रन्थ तो उन्हें कण्ठस्थ था और उसी अनुमानसे पन्ने उलटते जाते थे।

कहनेका तात्पर्य है कि आप अपने आराध्य-इष्टके चरित, गुण आदि जिसमें हों उस ग्रन्थको निष्ठापूर्वक अपनाकर उसका नित्य पाठ करेंगे तो आपपर ग्रन्थ-कृपा भी होगी और आपमें इष्टके प्रति भक्तिका जागरण भी होगा।

[प्रेषक—श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

निरपराध प्राणीको सतानेका फल

घटना लगभग ५५ वर्ष पुरानी है, पर है सत्य। यह घटना खास मेरठकी है। मेरठ जंक्शनसे शहरको जो सड़क जाती है, उसी सड़कपर एक मिलिट्रीका फार्म है। एक दिनकी बात है, कुछ दूरीपर कुछ महिलाएँ बैठी हुई अपनी खुरपीसे घास खोद रही थीं। उन्होंने घास खोद-खोदकर ढेर लगा रखा था। अकस्मात् जंगलसे उस ओर एक खरगोश भागता हुआ आ गया। उधर ही दो कुत्ते भी संयोगसे आ निकले। कुत्तोंकी जो दृष्टि खरगोशकी ओर गयी तो फिर क्या था, कुत्ते उस खरगोशको खानेके लिये पकड़ने दौड़ पड़े और उस खरगोशके पीछे हो लिये। जिधरको भी वह खरगोश जाता, वे भी उसके पीछे दौड़ने लगते, बेचारा खरगोश अब तो बड़ा परेशान हुआ और कभी तो अपने प्राण बचाता हुआ इधरको भागे और कभी अपने प्राण बचाता हुआ उधरको भागे, पर कुत्ते उसके पीछे लगे रहे और उन्होंने खरगोशका पीछा करना नहीं छोड़ा। इस दृश्यको देखनेके लिये इधर-उधरके कितने ही मनुष्य वहाँपर इकट्ठे हो गये, पर किसीने भी उस बेचारे खरगोशके प्राण बचानेकी तनिक भी चेष्टा नहीं की और कुत्तोंको नहीं भगाया और न ही मारा; बल्कि उलटे खड़े-खड़े देखते रहे और उसे एक अच्छा खासा तमाशा समझकर इसे देखते रहे और इसमें बड़ी दिलचस्पी लेते रहे कि देखें, अब क्या होता है? किस प्रकार कुत्ते इसे पकड़कर दबोचते हैं और कैसे खाते हैं? अब उस बेचारे खरगोशका एकमात्र उस भगवान्‌के अतिरिक्त और कौन रक्षक था, कौन अपना था, जो उसकी रक्षा करता और उसके प्राण बचाता? जब उस खरगोशने देखा कि मुझे अब कुत्तोंने चारों ओरसे घेर लिया है और जंगलमें भागनेके लिये अब कोई रास्ता नहीं है, अब प्राण नहीं बचेंगे तो वह बेचारा एकदम झटसे छलाँग मारकर और दौड़कर उन महिलाओंने जो घासका ढेर लगा रखा था, उस घासके ढेरमें घुस गया और चुपचाप छुपकर बैठ गया। अब तो सब दर्शकोंको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई, सबने उस ईश्वरको बड़ा धन्यवाद दिया और कहा कि चलो, इस बेचारे खरगोशके भगवान्‌ने प्राण बचा दिये। आज यदि यह यहाँपर घास न होती तो बेचारा खरगोश कभी नहीं बचता, मारा जाता। भगवान्‌ने पहले ही इसे बचानेके लिये यहाँपर घासका ढेर लगवा दिया था। जिसके भगवान् रक्षक हैं, भला उसे कौन मारनेवाला है? खरगोशको और अन्य दर्शकोंको यह कहाँ पता था कि यह एक बार तो कालके मुँहमेंसे साफ बच गया है, पर अभी दूसरी बार फिर कालके मुँहमें जाना बाकी है और भगवान्‌को इसे पुनः साफ बचाकर अपनी दूसरी अद्भुत लीला और चमत्कार दिखाना बाकी है।

बात यह हुई कि भगवान्‌की अद्भुत महिमाकी जब ये बातें दर्शकोंके मुखसे पासमें खड़े हुए एक घोर उद्दण्ड नास्तिकने सुनीं, जो ईश्वरको नहीं मानता था तो उसे यह बातें सहन नहीं हुईं और उसका पारा चढ़ गया। वह बड़ा चिढ़ा और बड़ी जोरसे ईश्वरका मजाक उड़ाते हुए और ठट्ठा मारकर हँसते हुए आगे बढ़ा। उसने घासके ढेरमें अपना हाथ घुसेड़कर उस खरगोशको पकड़ लिया। अब क्या था? अब तो खरगोश बड़ा छटपटाया। उसने उसके दोनों कान अपने एक हाथसे पकड़कर उसे अधरमें लटकाते हुए अपने दूसरे हाथसे किरपाण निकालते हुए कहा कि तुम लोग कहते हो कि इस खरगोशको भगवान्‌ने बचा लिया। यह बात तुम्हारी बिलकुल गलत है, इसमें भगवान्‌के बचानेकी क्या बात थी? यह तो इस समय इत्तफाकसे घासके ढेरमें घुस गया। इसलिये यह कुत्तोंद्वारा मरनेसे बच गया। अब लो, मैं इस खरगोशकी इस अपनी किरपाणसे गरदन काटकर मारता हूँ और—

'हुण असि देखेंगे इसदे भगवान नु कैसे बचाता है?'

देखेंगे कि तुम्हारा भगवान् अब इसे मरनेसे कैसे बचाता है और अब इस खरगोशकी तुम्हारा भगवान् कैसे रक्षा करता है? भगवान्‌को खुले रूपमें दी गयी

उस नास्तिककी चुनौतीको सबने सुना और सुनकर सबके चेहरे एकदम फीके पड़ गये और अब तो सब बड़े ही घबड़ाये और टकटकी लगाये इस अद्भुत दृश्यको देखने लगे कि अब क्या होता है? अब तो यह किसीको भी यह विश्वास नहीं था कि अब इस खरगोशकी किसी प्रकार रक्षा हो सकेगी और इस जालिमके हाथोंसे इस बेचारेके प्राण बच सकेंगे; वह जालिम साक्षात् काल बनकर उनके सामने खड़ा था और सब मुर्देकी तरह एकटक इस दृश्यको देख रहे थे और किसीमें भी ऐसा साहस नहीं था कि जो ईश्वरको भी चुनौती देनेवाले इस नास्तिक जालिमको ललकारता और इस नास्तिकके सामने आने और उसकी रक्षा करनेका साहस करता? अब तो बस चारों ओर निराशा-ही-निराशा थी। ठीक उसी समय जबकि वह जालिम अपने एक हाथमें खरगोशके कान पकड़कर उसे अधरमें लटकाये हुए था और खरगोश बड़ा भयभीत एवं छटपटा रहा था, उधर वह नास्तिक अपने दूसरे हाथमें किरपाण लिये उसकी गरदनपर वार करके उसके प्राण लेना चाहता था, तभी ईश्वरीय लीलाने अपना वह अद्भुत चमत्कार दिखाया कि जिसे देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये और दाँतों तले अँगुली दबा लिये। चारों ओर 'जय हो-जय हो', 'धन्य-धन्य', 'वाह-वाह' की ध्वनि गूँज उठी। बात यह हुई कि उस नास्तिक उद्दण्डने ज्यों ही यह कहकर कि '**हुण असि देखेंगे इसदे भगवान नु कैसे बचाता है**' चमचमाती किरपाण हाथमें लेकर खरगोशकी गरदन काटनेको चलायी तो वह किरपाण उस खरगोशकी गरदनकी ओर तनिक भी न जाकर सीधे ऊपरकी ओर गयी और जिस हाथसे वह खरगोशके कान पकड़ उसे अधरमें लटकाये हुए था, ठीक उसी हाथपर जाकर लगी और हाथको पहुँचेतक चीर डाला—फाड़ डाला, बड़े जोरसे खूनके फव्वारे छूटने लगे। वह खरगोश तो साफ छूटकर जंगलकी ओर भाग गया और वह व्यक्ति एकदमसे बेहोश होकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे चारपाईपर डालकर अस्पताल पहुँचाया गया। होश आते ही उसकी सारी नास्तिकता झड़ गयी और अक्ल ठिकाने आ गयी। जो एक महान् विपत्तिग्रस्त निरपराध खरगोशकी रक्षा करनेके बदले उसके प्राण लेनेपर उतारू हो गया था और बड़े गर्वके साथ उस जगन्नियन्ताको चुनौती दे रहा था, वह जालिम खरगोशका बाल भी बाँका नहीं कर सका और उलटा अपना हाथ अपनी ही किरपाणसे स्वयं अपने हाथसे काटकर सदा-सर्वदाके लिये टोंटा बन बैठा, अपनी करनीका और निरपराध प्राणीको सतानेका प्रत्यक्ष फल सदाके लिये भुगत बैठा। इसे कहते हैं ईश्वरीय लीलाका अद्भुत चमत्कार!

कौन कहता है कि ईश्वर नहीं है और ईश्वर जिसको बचाना चाहे, उसे कौन मार सकता है? आखिर 'अनाथके नाथ' और 'निर्बलके बल' तो वे ही हैं।

—भक्त रामशरणदास

(२)

श्रीमद्भगवद्गीता-श्रवणका अद्भुत चमत्कार

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

यह प्रसंग लगभग २५ वर्ष पुराना है। सन् १९८९ ई० में मेरी बहनका विवाह हुआ था। प्रातः बारातियोंकी विदाईकी तैयारी हो रही थी। तभी अचानक मेरी माताजीको बेहोशी आ गयी, सभी लोगोंके प्रयाससे लगभग आधे घण्टेमें होश आ गया। सभी लोग अपने-अपने गन्तव्यको चले गये।

लेकिन इसके बाद भी महीना-दो महीनापर बेहोशी आ जाती थी। अतः इलाज करवाना आवश्यक था। फलतः आर्थिक तंगीके बावजूद इलाज करवानेहेतु राँची (झारखण्ड) डॉ० पी० आर० प्रसादके पास ले गया। देखकर उन्होंने रोगको हृदयरोग कहा और दवाइयाँ लिखीं। दवाइयोंका दाम पूछनेपर दुकानवालेने ६०० या ७०० रुपये बताया, जो आजीवन चलना था।

मैंने रुपयोंके अभावमें दवाई नहीं खरीदी और माँसे कहा कि प्रत्येक माह इतनी महँगी दवा चलाना पिताजीकी आमदनीसे बहुत मुश्किल है। उस समय

पिताजीको गाँवके डाकघरमें कार्य करनेके एवजमें मात्र एक हजार रुपये मासिक भत्ता मिलता था, जिसमें परिवारका खर्च और दवाईका खर्च—ये दोनों वहन करना सम्भव नहीं था। इसलिये मैंने माँसे कहा कि अब भगवान्‌का नाम लेकर घर चलो।

तत्पश्चात् दो-तीन दिनके बाद मेरे दिमागमें एक बात आयी कि गीता सुननेसे मोक्ष (मुक्त) होता है तो क्यों नहीं माँको गीता सुना दें, या तो रोगसे मुक्त होगी या नहीं तो जीवनसे। यह सोचकर उस दिनसे प्रत्येक दिन सायंकालमें घरके अन्य सदस्योंके साथ माँको गीता सुनाना प्रारम्भ किया। उस गीता-श्रवणके प्रभावसे भगवान्‌की कृपासे अभीतक (७५ वर्षकी उम्र है) बेहोशी नहीं आयी। माँ स्वस्थ हैं।

अत: मेरा विश्वास है कि श्रीमद्भगवद्गीतामें कही गयी बात—जो लोग अनन्य भावसे मेरी उपासना करते हैं, उनका कल्याण और उनकी रक्षा मैं करता हूँ, बिलकुल सत्य एवं सार्थक है।—**सत्येन्द्र मिश्र**

(३)

हनुमानचालीसापाठसे दु:स्वप्ननाश

ग्रह-नक्षत्र तभीतक अधिक दु:खदायी होते हैं, जबतक व्यक्ति भगवान्‌की शक्ति और दयाका आश्रय नहीं समझता। भगवत्कृपामें वह शक्ति है, जो असम्भवको सम्भव कर देती है; अनिष्टका विनाश करती है। भगवदाश्रयके चमत्कारकी बात लिखता हूँ। मुझे रात्रिमें भयानक सपने आते थे। वे कुछ क्षणके होते, लेकिन लम्बे प्रतीत होते। मैं घबरा जाता था। नींदका झोंका आनेपर भी सोनेका मन नहीं होता; क्योंकि निद्रामें सामर्थ्य अपने हाथमें नहीं होता। मैंने रामजीका ध्यान करके रोकर करुणापूर्ण हृदयसे प्रार्थना की और हनुमानचालीसाका पाठ किया। मुझे उसी रातसे सपने आने बन्द हो गये।—**श्रीकृष्ण अग्रवाल**

(४)

अद्भुत सामाजिक सद्भाव

घटना लगभग तीस वर्ष पहलेकी है। केरलके एक मुसलिम भाईके घरमें आग लगी। देखते-देखते उसकी लपलपाती लपटोंने घरको अपने उदरमें समेट लिया। उस बन्धुके दो मासूम मुन्ने घरमें ही रह गये थे। भारी-भरकम धुआँ और लपलपाती लपटें! माता-पिता हक्के-बक्के बन बालकोंकी रक्षाके लिये करुण गुहार कर रहे थे—हाय-हाय करते हुए अश्रु बहा रहे थे। पर जीवन-मोह उन्हें मकानमें जानेसे रोके खड़ा था। इसी क्षण जीवनकी बाजी लगा, परोपकारी पड़ोसी कृष्णन् मकानमें घुसे और बालकोंको वे सुरक्षित बाहर निकाल लाये, पर वे स्वयं आगसे बुरी तरह झुलस गये—और-तो-और अपने पीछे वृद्धा माँ, पत्नी और दो अबोध बच्चोंको छोड़ वे इस संसारसे चल बसे!

परमार्थमें प्राण-विसर्जन करनेवाले इस महान् आत्माके निराश्रित परिवारके लिये कालीकटके एक प्रमुख पत्रने सहायताकी अपील जारी की और देखते-देखते बीस हजार रुपयेकी राशि एकत्रित हो गयी।

पत्रके संचालक जब यह धनराशि कृष्णन्‌की विधवाको भेंट करने उनके घर पहुँचे तो उस विधवा पत्नीने विनम्रतापूर्वक उक्त राशि ग्रहण करनेसे इनकार करते हुए टूटे तन और थके मनसे मात्र इतना ही कहा—

'वे इतने ही दिनोंके लिये आये थे और मानवीय कर्तव्य पूराकर चल दिये·········एक दिन हमें भी वहाँ जाना है; यदि मैं उनके कर्तव्यको इन रंगीन नोटोंके बदले बेच दूँ तो बताइये वहाँ क्या जवाब दूँगी—क्या जवाब दूँगी·········।' कहते-कहते उनकी आँखें भर आयीं और आँचलसे आँखें पोंछती रुँधे गलेसे वह इतना ही कह पायी—'पुण्यसे हमें हाथ-पैर मिले हैं। रामका सम्बल थामे हम अपना जीवन जी लेंगे·······पड़ोसी-परिवारका आशियाना अग्निसात् हो गया। इस परिवारके लिये धरती ही बिस्तर एवं आसमान साया रह गया है। अत: मेरा आपसे यही निवेदन है कि यह धनराशि इस बेसाया परिवारको मकान बनवानेके लिये दे दी जाय।

वह बीस हजारकी धनराशि उस मुसलिम परिवारको घर बनानेके लिये दे दी गयी।

मनन करने योग्य

स्वामिभक्ति धन्य है

महाराणा संग्रामसिंह स्वर्ग पधारे। मेवाड़के सिंहासनके योग्य उनका ज्येष्ठ पुत्र विक्रमादित्य सिद्ध नहीं हुआ। राजपूत सरदारोंने उसे शीघ्र सिंहासनसे उतार दिया। छोटे कुमार उदयसिंह अभी शिशु थे। उनका राज्याभिषेक तो हो गया; किंतु दासीपुत्र बनवीरको उनका संरक्षक बनाया गया। बालक राणा उदयसिंहकी ओरसे बनवीर राज्य-संचालन करने लगा।

बनवीरके मनमें राज्यका लोभ आया। एक रात्रिको वह स्वयं नंगी तलवार लेकर उठा और राजभवनमें नि:शंक सोते राजकुमार विक्रमादित्यकी उसने हत्या कर दी। उसका यह क्रूर कर्म राजभवनमें दोने-पत्तल उठानेका काम करनेवाला सेवक देख रहा था। वह दौड़ा हुआ राणा उदयसिंहकी धाय पन्नाके पास गया। उसने बतलाया—'बनवीर इसी ओर आ रहा है।'

पन्नाके एक पुत्र था चन्दन, किंतु स्वर्गीया रानी करुणावती और राणा साँगाके कनिष्ठ पुत्र उदयसिंहका भी लालन-पालन वही कर रही थी। चन्दन और उदयसिंह उसके दो नेत्र थे। अयोग्य विक्रमादित्यके राज्यसे पृथक् कर देनेपर उदयसिंह बनवीर दासीपुत्रकी संरक्षामें उत्तराधिकारी घोषित हुए थे। बनवीर मेवाड़पर निष्कण्टक राज्य करना चाहता था।

पन्ना धायने दो क्षणमें कर्तव्य निश्चित कर लिया। उसने सोते हुए उदयसिंहके वस्त्र उतार लिये और उन्हें एक टोकरीमें लिटाकर ऊपरसे दोने-पत्तलसे ढक दिया। वह टोकरी उस सेवकको देकर कह दिया—'चुप-चाप राजभवनसे बाहर निकल जाओ। नगरके बाहर नदीके पास मेरी प्रतीक्षा करना।'

निद्रित उदयको उसी प्रकार टोकरेमें पत्तलोंके नीचे छिपाकर बारी बाहर निकल गया। पन्नाका हृदय जोरोंसे धड़क रहा था। पर वह मौन तथा शान्त थी।

अपने पुत्र चन्दनको उस स्वामिभक्ता धायने उदयसिंहके कपड़े पहिनाकर उनके पलंगपर सुला दिया। इतनेमें ही रक्तसे सनी तलवार लिये बनवीर आ पहुँचा। उसने पूछा—'उदय कहाँ है?'

हृदयपर पत्थर रखकर पन्नाने अपने बच्चेकी ओर संकेत कर दिया। एक ही झटकेमें उस बालकका मस्तक बनवीरने शरीरसे पृथक् कर दिया। वह शीघ्रतासे वहाँसे चल दिया। पन्ना अपने पुत्रका शव लिये नदी-किनारे पहुँची। आज वह खुलकर रो भी नहीं सकती थी। पुत्रका शरीर नदीमें विसर्जित करके वह उदयसिंहको लेकर वहाँसे चली गयी।

'अपने राजाकी रक्षा करो।' सर्वत्र निराश होकर पन्ना देयराके शासक आशाशाहके पास पहुँची और उदयको उनकी गोदमें डाल दिया।

समय आया जब कि बड़े होकर उदयसिंहने बनवीरको उसके कर्मका दण्ड दिया और मेवाड़के सिंहासनको भूषित किया। पन्ना धायके अपूर्व त्यागने ही राणाके कुलकी रक्षा की। धन्य है ऐसी स्वामिभक्ति!

इतिहास साक्षी है, बनवीरके कुकर्मोंका उसे भरपूर फल मिला। उदयसिंह मेवाड़के सिंहासनपर आरूढ़ हुए।

वीर उदयसिंहने मातृ-तुल्य पन्नाके चरण-स्पर्श किये। पन्ना महान् थी—इसे प्रत्येक इतिहासकार सादर लिखते हैं।

॥ श्रीहरिः ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ८९वें वर्ष (वि०सं० २०७१-७२, सन् २०१५ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

पद्य-सूची

संकलित-सामग्री

प्र० ति० २०-११-२०१५
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

जनवरी सन् २०१६ ('कल्याण' वर्ष ९०)-का विशेषाङ्क—'गंगा-अङ्क'

कल्याणके जिन ग्राहकोंका सदस्यताशुल्क दिसम्बर मध्यतक जमा हो जायगा उन्हें **'गंगा-अङ्क'** रजिस्ट्रीके द्वारा, तदुपरान्त शेष ग्राहकोंको क्रमानुसार वी०पी०पी० के द्वारा प्रेषित किये जानेका कार्यक्रम रहेगा। सदस्यताशुल्क भेजनेपर भी यदि वी०पी०पी० प्रेषित हो गयी है तो सहृदयतावश वी०पी०पी० छुड़ा लेनी चाहिये तथा प्रेषित रकमका विवरण भेज देना चाहिये। विशेषाङ्क प्रेषणकी सूचना SMS के द्वारा देनेका प्रयास रहता है अतएव अपना मोबाइल नं० update करा लेवें। कदाचित् ग्राहक बने रहनेमें असमर्थता हो तो सूचना प्रेषित करनेकी कृपा करें। किसी अनजान/कथित एजेन्टको सदस्यताशुल्क न देवें। नये ग्राहक भी वी०पी०पी० द्वारा अंक मँगा सकते हैं।

विशेष सुविधा—अब मासिक अंकोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भिजवानेकी सुविधा उपलब्ध है। वार्षिक ग्राहक सदस्यताशुल्कके अतिरिक्त ₹२०० (दो सौ) तथा पंचवर्षीय ग्राहक ₹१००० (एक हजार) जमाकर प्रत्येक माहका अंक रजिस्टर्ड डाकसे प्राप्त कर सकते हैं।

स्वयं ग्राहक बने रहें एवं इष्ट-मित्रोंको भी ग्राहक बनावें। नये वर्षमें उपहारस्वरूप देनेके लिये **'गंगा-अङ्क'** सर्वोत्तम भेंट है।

सदस्यता-शुल्क—वार्षिक ₹ २०० अजिल्द (₹ २२० सजिल्द), पंचवर्षीय ₹ १००० अजिल्द (₹११०० सजिल्द)।

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ०प्र०)

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपलब्ध विशेषाङ्क

कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹
41	शक्ति-अङ्क	१५०	574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१६०	1361	सं० श्रीवाराहपुराण	१००
616	योगाङ्क (परिशिष्टसहित)	२००	1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२४०	791	सूर्याङ्क	१३०
636	तीर्थाङ्क	२००	789	सं० शिवपुराण	२००	584	सं० भविष्यपुराण	१५०
604	साधनाङ्क	२५०	631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२००	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१४०
1773	गो-अङ्क	१७०	653	गोसेवा-अङ्क	१३०	1044	वेद-कथाङ्क-परिशिष्टसहित	१७५
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०	1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना अङ्क	१२०	1132	धर्मशास्त्राङ्क	१५०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	९०				1189	सं० गरुडपुराण	१६०
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	२००	1542	भगवत्प्रेम-अङ्क-अजिल्द	६५
43	नारी-अङ्क	२४०	517	गर्ग-संहिता	१५०	1592	आरोग्य-अङ्क	२००
659	उपनिषद्-अङ्क	२००	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	१००	1610	महाभागवत (देवीपुराण)	१२०
279	सं० स्कन्दपुराण	३२५	1362	अग्निपुराण	२००	1793	श्रीमद्देवीभागवताङ्क-पूर्वार्द्ध	१००
40	भक्त-चरिताङ्क	२३०	1432	वामनपुराण-सानुवाद	१२५	1842	श्रीमद्देवीभागवताङ्क -उत्तरार्ध	१००
1183	सं० नारदपुराण	२००	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	२७०	1985	श्रीलिङ्गमहापुराणाङ्क-सानुवाद	२००
667	संतवाणी-अङ्क	१५०	657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०	1947	भक्तमाल-अङ्क	१३०
587	सत्कथा-अङ्क	२००	42	हनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित)	१५०	1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०